श्रीमहावीराय नमः।

भ० महावीरके समयमें होनेवाली

महाराजा श्रेणिककी पट्टराणी

महाराणी चेलना

लेखक:—

स्व० बाबू कामताप्रसादजी जैन, अलीगंज (एटा)

प्रकाशक :—

मूलचन्द किसनदास कापड़िया,

दिगम्बर जैन पुस्तकालय, सूरत।

तीसरी आवृत्ति] वीर सं० २४९३ [प्रति १०००

"जबलों नहिं भारतकी ललना,
श्रुति शास्त्र पुराण हिं पाठ करेगी।
तबलों नहिं आरत भारतकी,
यह हालत हाय कबौं सुधरेगी॥"

'जैनविजय' प्रिन्टिंग प्रेस, गांधीचौक-सूरतमें मूलचन्द किसनदास कापड़ियाने मुद्रित किया।

मूल्य—रु. २-०-०

मान्य वांचकवृन्द !

भारतीय ऐतिहासिक संसारके दैदीप्यमान आदर्श-रत्न अभी-तक अन्धकारमें ही व्याप्त है। तिस पर पूज्यनीय भारतीय रमणियोंका इतिहास और भी अन्धकारमे है। हमको उनके विषयमें बहुत कम ज्ञान है। यही कारण है कि हमारे दैनिक जीवनमें भारतीय रमणियोको वह महत्व अब दृष्टिगत नहीं होता, जिसके विषयमे कवि स्पष्ट शब्दोंमे कह रहा है:—

'सतीत्वेन महत्त्वेन, वृत्तेन विनयेन च।
विवेकेन स्त्रियः काश्चित् भूपयन्ति धरातलम् ॥

भाव यह है कि आचार्य स्त्रियाँ ऐसी भी बतलाते हैं जो अपने सतीत्वसे, महत्वसे, चारित्रसे, विनयसे, विवेकसे इस पृथ्वीतलको शृङ्गारित करती हैं। आज हिन्दू घरोंका यह स्वर्गीय भूपण अभिनन्दनीय शृङ्गार कहीं भी दिखाई नहीं पडता, अतएव अपने घरोंको यदि हमें 'दिव्यशृंगार' से अलकृत बनाना है तो आदर्श भारतीय रमणियोंके पावन जीवन पुनः प्रकाशमें लाना नितान्त आवश्यक है। प्रस्तुत पुस्तक इस ही बातको लक्ष्यकर लिखी जा रही है।

जैन शास्त्रोंमें सम्राट् श्रेणिक और महाराणी चेलनीका पुण्यमय चरित्र विशेप रीतिसे वर्णित है। उस हीका रसास्वादन आधुनिक नवीनताप्रेमी पाठकवृन्द कर सकें, इसको भी दृष्टिकोणकर

इस पुस्तकके लिखनेका प्रयास किया गया है। भाषा और प्रणालीमें नवीनता होनेके साथ ही पुरातन भावमें किंचित् फेरफार नहीं किया गया है। प्रत्युत अधिकतर प्राचीन आचार्योंके महद्वाक्योंको ही यत्रतत्र स्थान दिया गया है, अतएव इन उद्धरणोंके लिए हम उन सब ग्रन्थकर्ताओंके आभारी हैं, जिन्होंके ग्रन्थोंसे हमने सहायता ग्रहण की है।

अन्तमें हमें विश्वास है कि हमारे इस सद्प्रयासका समुचित उपयोग किया जायगा। एवं भवतु। (प्रथम आवृत्ति)

अलीगंज (एटा)
योग चतुर्दशी
वीर सं. २४५१

विनीत—
लेखक-कामताप्रसाद जैन।

निवेदन

स्व० बाबू कामताप्रसादजी रचित यह ग्रंथ हमने दूसरीवार प्रकट किया था वह भी बिक जानेसे इसकी यह तीसरी आवृत्ति प्रकट की जाती है। इस ग्रन्थमें महासती चेलिनीके साथ भ० महावीर और राजा श्रेणिकका जीवन परिचय भी मिलता है तथा बौद्धधर्मी श्रेणिक राजाको चेलिनीने कैसे जैनी बनाया यह सच्ची वार्ता सबको उपयोगी व अनुकरणीय है। आशा है यह तीसरी आवृत्तिका भी शीघ्र ही प्रचार हो जायगा।

सूरत-वीर सं. २४९३
सं० २०२३
ज्येष्ठ सुदी १५
ता. २२-६-६७

निवेदक—
मूलचन्द किसनदास कापड़िया
प्रकाशक।

विषय-सूची

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

परिस्थिति

"एस सुरासुरमणुसिंदं, वंदिदं धोदघाइकम्ममलं।
पणमामि वड्ढमाणं, तित्थं धम्मस्स कत्तारं ॥"

— श्रीमद् कुन्दकुन्दाचार्य।

वर्तमानकालमें अन्तिमतीर्थङ्कर भगवान महावीर-वर्द्धमानका धर्मचक्र व्याप्त रहा है। उन्हींके परम पवित्र सर्व हितकारी दिव्य उपदेशका रसपान कर हम सब अपना आत्म-कल्याण कर सकते हैं। सबको सच्चे सुख पानेकी उत्कट लालसा लगी हुई है। सब लोग सब ठौर यही चाहते हैं कि हमें दुःखोंसे छुटकारा मिले क्लेशों और पापोंसे पीछा छूटे तथा एक ऐसे सुख और शांतिपूर्ण स्थानकी प्राप्ति हो जहां सदैव सर्वथा आनन्दसे जीवन व्यतीत हो।

भगवान महावीरने स्वयं अपने पुरुषार्थके बल ऐसे आनन्द-स्थानको प्राप्त कर शास्वत सुखका रसास्वादन किया था और उस स्थानको प्राप्त करनेके पहिले उन्होंने अपनी अनुपम सर्वज्ञावस्थामें इस अव्याबाध सुखके संदेशको तथा आनन्द-मार्गको प्रत्येक जीवित प्राणीको बिना किसी भेदभावके बतला दिया था, उसे प्रत्येकको हृदयङ्गम करा दिया था। सबको सच्चे धर्मका स्वरूप ज्ञात हो गया था, परन्तु हठात् कालके प्रभाव अनुरूप मनुष्यकी अभिरुचि बदलती गई-बुद्धिकी कुशाग्रता क्षीण होती गई। परिणामतः आज फिर सारा संसार ही करीब२ सत्य ज्ञानको-निज आत्म रूपको देखनेमें असमर्थ हो रहा है और सांसारिक दुःखपाशोंमें जकड़ा हुआ वह त्राहि त्राहि पुकार रहा है

भगवान महावीरके धर्मशासनके रहते हुए भी वह सत्यको पानेमें असमर्थ हो रहा है। उसकी दृष्टि उस सुख संदेश तक पहुंचनेमें बाधित हो रही है यद्यपि अब भी वह संदेश संसारको दुःख-पाशोंसे छुड़ा, सुखके सुन्दर सिंहासन पर बैठानेके लिए सामर्थ्यवान है परन्तु हाय परिस्थिति! तेरी ही कृपासे सब ठार अंधकार ही अन्धकार व्याप्त है। मान-मत्सर, ईर्ष्या-द्वेष, स्वार्थ-लोभ, माया-क्रोध और सर्व शेष पापप्रवृत्तियां अपना प्राबल्य फैलाए हुए हैं।

परिणामतः स्वयं भगवान महावीरके पवित्र शासनके

अनुयायी उनकी कुशाग्रबुद्धि और विश्वप्रेमकी दृष्टिको अपनानेमें उदासीन बने हुये हैं । अपनी पापजनित मनोवृत्तियोंके अनुरूपमें वे लोक मूढताके ही आश्रित हो रहे हैं । वे लीक पीटनेमें ही आनन्दित हो रहे हैं, वस्तुस्थिति और वस्तुस्वभावकी ओरसे आंखें मींचे हुए हैं जिसके फल स्वरूप उनके जीवनके प्रत्येक कार्यमें दिखावटी दृश्य है । धर्म—अधर्म भेदको जाननेकी परवाह नहीं है । उनका तत्वज्ञानको ग्रहण करनेकी ओर ध्यान नहीं हैं।

हठतः ज्ञानावरणीय अप्रशस्त प्रकृतिके विशेष क्षयोपशमने कहीं उस ओर दृष्टि फेर भी दी तो उससे भी वहां अपने मनोविकारोंकी सिद्धिका कुत्सित प्रयास किया जाता है । कैसी बीभत्स हृदयद्राही अवनिका है ! क्या यही भगवान् महावीरके-शासनके रक्षक हैं ? वीर शिरोमणि, क्षात्रकुलदिवाकर श्री अतिवीरके परमपावन धर्मचक्रका शासन क्या ये ही कायर अनुयायी संसारमें पुनः स्थापित कर सकेंगे ?

तीर्थंकर—प्रसवनी ललनाललाम भारतीय रमणियोंका तिरस्कार करनेवाले भला किस प्रकार भगवान्के परमोत्कृष्ट शासनकी प्रभावना सर्वत्र प्रकट कर सकते हैं ? और उनके अहिंसा और शांतिके उपदेशको प्रत्येक जीवित प्राणीको कैसे हृदयंगम करा सकते हैं ।

जब साधारण जीवोंको वीरभक्तोंके कार्योंसे और दैनिक आचरणोंसे एक सच्चे गृहस्थके आदर्श जीवनका उदाहरण और

परम सुखमार्ग पर पहुंचनेके सद्प्रयास दृष्टिगत नहीं होंगे तो फिर भला वह किसतरह उसके यथार्थ रसका पान कर सकते हैं ? परन्तु परिवर्तनशील संसारके नियमानुसार फिर इस समय शुभोदयसे संसारकी दृष्टि बदलती जा रही है। वह यथार्थ मार्गको पानेकी खोजमें संलग्न हो रही है। आशाकी आभा और हर्षके अंकुर भी प्रस्फुटित हो रहे हैं; क्योंकि संसारमें शांति और सुखका साम्राज्य स्थापित करनेके लिये महिमा-शालिनी महिलायें कर्मक्षेत्रमें आ रही हैं।

जिसप्रकार पूर्व भारतकी विदुषी महिलाओंकी बिरदावली आज भी हमारे हृदयोंको उनके सद्गुणोंमें रंजायमान कर रही है, उसी तरह भविष्य संतान आधुनिक-विदुषी रमणियोंके गुणोंमें अपूर्व गर्व रक्खेंगी। जैन-रमणी-रत्न श्रीमती वीरा चेलनी देवीने जिस साहस और वीरतासे अपने राज्यमें शांति और सुखकी सलौनी परिस्थितिको घर घरमें फैलाकर धर्म-राज्यकी सृष्टि की थी, उस ही प्रकार आज ज्ञात संसारकी अग्रगण्य सन्नारियां उसको पुनः स्थापनामें सलग्न हैं। वे अपने कर्तव्यपालनमें दृढ़परायणा हैं, परन्तु यदि वीरभक्त उनके इस कृत्यसे सहानुभूति रखते हैं और चाहते हैं कि सच्चा धर्मराज्य स्थापित हो तो सर्वदशामें सर्वथा सुखकारी भगवानके संदेशको उनके कानों तक पहुँचा दें, परन्तु यह तब ही हो सकता है जब हम अपनी आंखें खोलें और स्थितिकी यथार्थताको जानें,

अपनी वासनाओं और मानसिक कमजोरियोंको परास्त कर तथा स्वयं एक आदर्श गृहस्थका जीवन व्यतीत कर साक्षात् विश्व-प्रेमका नमूना बनकर दिखलायें।

पारस्परिक कलह, दाम्पत्तिक अविश्वास और जातीय द्वेषको तिलांजलि दें। महिलाओंके प्रति सद्बुद्धिको ग्रहण करें और उनके जीवन ज्ञानमय बना दें, जिससे भविष्य संतान विशेष ज्ञानपटु और धर्मनिष्ट उत्पन्न हो, परन्तु यह सब तब ही हो सकता है जब हम शुद्ध हृदयसे भगवानके संदेशको सार्थ शुद्ध ग्रहण करें और उसके अनुसार अपना दैनिक जीवन बनाएँ। तब परिस्थिति स्वयं पलट जायगी ! वातावरण धर्ममय प्रेममय ही सर्वत्र दिखाई देगा।

भगवान् महावीरके समयमें भी भारतीय मनुष्यकी दशा अबसे किंचित अच्छी होते हुए भी अच्छी नहीं थी। बेशक उन्हें तब नोन, तेल, लकड़ीकी फिकर नहीं थी। जीवन आवश्यकताओंके लिए धन एकत्रित करनेमें ही दिन रात लगे रहनेकी आवश्यकता नहीं थी। वह धन सम्पत्तिसे भरपूर थे। आवश्यकताओंको सीमित रखना जानते थे जिसके कारण उनका सामाजिक जीवन आदर्श था। जो कालके प्रभावकर उनमें कमताइयां घर कर गई थीं वे भगवान् महावीरके दिव्य जीवन प्रकाशसे दूर हो गई थीं।

भगवान् पार्श्वनाथके निर्वाण गए उपरांत पुनः ब्राह्मण

धर्मने प्राबल्य ग्रहण किया था, परन्तु अब उसके लिये यह संभव नहीं था कि वह अपना अटल राज्य चहुं ओर फैला सकता। भगवान् पार्श्वनाथकी शिष्यपरम्पराके धुरंधर आचार्य यथार्थ सत्यका दर्शन प्रत्येकको हर ओर करा रहे थे, परन्तु तब भी ब्राह्मण धर्मके साथ २ आजीवकादि मतोंकी इतनी प्रबलता फैली हुई थी कि उस समय भी जनता सामाजिक अत्याचारों और धार्मिक अनर्थोंको सहन करनेमें असमर्थ हो रही थी। मनुष्य मनुष्यका भेद उसको आंखोंमें अखर रहा था।

वह इस बातको प्राकृतिकरूपमें स्वीकार करनेको लाचार थी कि समान आत्म-द्रव्यको रखनेवाले मनुष्य समानरूपमें सामाजिक और धार्मिक अधिकारोंको पानेमें क्यों रोके जाते हैं? क्यों केवल ब्राह्मण ही धर्मशास्त्रोंको पढ़ सकते हैं? क्यों नहीं चाण्डाल आदि मनुष्योंको यथोचित्त धर्मसाधनका द्वार खुला हुआ है? क्या कारण कि सामाजिक विवाह संबंधादि नियमोंमें उनके प्रति कठोरताका वर्ताव न रहनेपर भी धार्मिक संसारमें उनके स्वत्व अपहरण किए जाते है? क्या वजह कि एक क्षत्री राजा सदाचार हीनकुलकी कन्याका पाणिग्रहण कर सके, परन्तु उस ही कुलको समान धर्म और समान नियमोंका पालन करना मना हो?

ऐसे ही प्रश्नोंने उस समय एक सामाजिक और धार्मिक क्रान्ति उपस्थित कर दी; जिसके कारण प्रत्येक अवस्थाके मनुष्योंको यह साहस हो गया कि वे गृह त्यागकर इन

अत्याचारोंके विरुद्ध आवाज उठाकर अपने अपने अनुयायी बनाने लगे। जनता भी जान गई कि यथार्थमें पारस्परिक मनोमालिन्य, विद्वेष और भेदभाव स्वाभाविक नहीं है।

व्यवहारके लिए भले ही भेदभावको एक उचित सीमामें रक्खा जाय, परन्तु उसका भाव यह नहीं है कि मनुष्यको मनुष्य ही न समझा जाय और उसके प्रति मनुष्योचित व्यवहार भी न किए जाय। धर्म-द्वार किसीके लिए भी रुका हुआ नहीं रह सकता। पापीसे पापी भी उसका पालन उचित रीतिसे कर सकता है वह भी धर्मशास्त्र श्रवण कर सकता है।

इस समय जो ब्राह्मण साधारण जनताको शास्त्र श्रवण करने और उनका अध्ययन करनेको अनधिकार चेष्टा समझते थे वह भी एक धींगाधींगी थी। उसमें उनका कुछ न कुछ स्वार्थ ही था। यथार्थताके विपरीत जब कभी आवाज उठाई जायगी तब वहां पापकी प्रधानता समझना चाहिये।

इतिहास इसका साक्षी है कि मनुष्य सत्यके विपरीत तब ही आचरण करता है जब उसका उसमें कुछ स्वार्थ होता है। इसमें जनताको मालूम हो गया था कि ब्राह्मण वर्गकी आजीविकाका साधन इन धर्मग्रन्थोंको जनतामें प्रचलित न होने देनेमें ही था; क्योंकि वह जानते थे कि यदि साधारण जनता शास्त्रोंके यथार्थ भावको जान जायगी तो उनको वह यज्ञमें जो बहुमूल्य दक्षिणा देती है वह देना बन्द कर देगी। वह जान

जायगी कि यज्ञाहूति और बलिहिंसासे मनुष्यको आत्म-स्वातंत्र्यका लाभ नहीं हो सक्ता है ।

निरापराध मूक पशुओंकी बलिहिंसासे कभी मनुष्यकी प्राप्ति नहीं हो सकती और न थोथे हटयोगसे धर्मलाभ हो सकता है । उसकी प्राप्ति तो आत्मसंयम और त्यागभावमें है । विषय-कषायोंके बढ़ानेवाले उपायोंद्वारा कभी भी सुख-शांतिकी प्राप्ति नहीं हो सकती ।

इस समय भी निजी पाशविक इच्छाओंकी पूर्तिके लिए मनुष्य परस्पर अत्याचार कर रहे हैं । अपने अपने निजी स्वार्थोंकी सिद्धिके लिए हिंसा और कषायोंकी शरण ले रहे हैं । निरपराध पशुओंका खून धर्मके नामपर ही नहीं प्रत्युत अपने पेटको भरनेके लिए भी बहाते हैं, उसी तरह उस समय विशेष-कर धार्मिकताको लेकर अत्याचारोंकी भरमार थी ।

उस समय समाजमें महिलाओंकी वर्तमानके समान हीन अवस्था प्राप्त नहीं थी, प्रत्युत उन्हें समाजके प्रत्येक सम्बन्धमें यथोचित सहयोग प्राप्त था । वे भी सामाजिक कार्योंमें हस्तक्षेप कर सकती थीं और परभवकी हितचिन्तनाको लक्ष्यकर गृह-त्याग आर्यिकाओंके व्रत पालन करती थीं । महिलाओंका महत्व उस समयकी जनताकी दृष्टिमें इतना बढ़ा चढ़ा था कि पुरुष माताके नामकी अपेक्षा संसारमें प्रख्याति पाते थे किन्तु उस समयकी महिलाएं आजकलकी स्त्री-समाजकी भांति अज्ञानताके पर्देको मुखपर नहीं डाले हुईं थीं । अविद्या रूपी

चुडैलसे घिरी हुई वे अपने घरोंमें ही बंद नहीं रहतीं थीं। प्रत्युत उस समय उन महिलाओंके मुख-ज्ञानकी अपूर्व महिमासे प्रफुल्लित हो रहे थे।

विद्याके रसपानसे उनमें वह तेज और शक्ति विद्यमान थी कि वह देश-विदेशमें सच्चे सुख-शांतिका संदेश फैलातीं अपना प्रभाव चहुं ओर फैला रहीं थीं। आर्यिका कुल रत्न चंदना उस समय महिला समाजमें उसही तरह प्रकाशमान हो रहीं जिस तरह अंधकारमें हीरा मणि। तीर्थंकर-प्रसवनी श्री प्रियकारिणी अपनी अपूर्व विद्यापटुताके अनुरूप देवलोकके जीवोंको भी प्रिय थीं। वणिक्-वनिता-श्रेष्ठ नन्दश्री अपनी चातुर्य-कुशलताके साहससे पुरुषों तककी परीक्षा करनेको उद्यत होतीं थीं, परंतु दुःख! अब जरा आजकी बहिनोंपर दृष्टि डालिए! बिचारी सब तरहसे सब ओरसे दुःखित त्रासित और पतित हो रही हैं! इसमें उनका अपराध नहीं है! वह तो स्वभावसे ही लज्जा और शीलकी प्रतिमूर्ति हैं! उनकी अधो-दशाके मूल कारण धर्मात्मा होनेका दम भरनेवाले हम पुरुषगण हैं! हाय! यह पतन, यह अत्याचार, यह अधर्मता किस तरह भगवान् महावीरके अनुयायियोंको सहन हो सकती है?

क्या अहिंसा, प्रेम, दया, अनुकंपा और साम्यभावका पालन इस ही तरहसे किया जा सकता है? क्या कन्याके जन्मको अशुभ सूचक मानकर हम सुखी हो सकते हैं? क्या

महिलाओंको अविद्यामें ग्रसित रखकर हम उन्नति कर सकते हैं? नहीं, कदापि नहीं! हमारे जीवन नष्ट हो रहे हैं, हम दुःखोंकी आगमें सिसक-सिसककर मर रहे हैं! क्यों? इसी लिए कि हमने जगज्जननी माताओंका अपमान करना स्वीकार किया, उन्हें हर प्रकारसे दुःखित रखनेमें ही अपना श्रेय समझा! 'परन्तु निर्बलकी आहसे सार भस्म हो जाता है।' इस दशासे पीछा छुटानेके लिए अपने जीवनोंको सुखी बनानेके लिए हम पुरुषोंके लिए आवश्यक है कि हम भगवान् महावीरके समयमें जिस प्रकार महिलाओंकी महत्वशाली दशा थी तथा श्रावकोंके जिस प्रकार दैनिक जीवन बन रहे थे उस ही प्रकार उनकी दशा और अपने जीवन उन्नतशाली धर्मपूर्ण बनावें।

भगवान महावीरके सदुपदेशको ग्रहण कर जिस प्रकार उस समयकी जनताने अपने धार्मिक वातावरणको सर्व प्रिय बना लिया था, उस ही प्रकार उनके दिव्य संदेशको चहुँ ओर व्याप्त करके सुख-शांतिका साम्राज्य आज भी स्थापित किया जा सकता है। मात्र आवश्यकता है कि आज भगवान महावीरके भक्त अपने उत्तरदायित्वको समझें तथा स्वयं नमूना बनकर प्रशान्त बुद्धिशाली और समुन्नत बनें।

यह तब ही होना संभव है कि जब हमारी मातायें परम विदुषी बनें कि जिनकी गोदमें लालित-पालित होकर आगामी सन्तान वस्तुतः सच्ची वीर-भक्त बन सकें। इस ही मातृओंको

सर्व हृदयोंमें प्रमुख स्थान देनेके लिए आवश्यक है कि वीर शासनके चमकते हुये आदर्श रत्नोंको उनके समक्ष लाया जावे और उनके गुणोंको प्रत्येक स्त्री-पुरुषको हृदयङ्गम कराया जावे।

इस ही बातको लक्ष्यकर आज हम यहां पाठक और पाठिकाओंके सन्मुख भगवान महावीरके समयकी एक भारतीय विदुषीका पवित्र जीवनचरित्र प्रस्तुत करते हैं। हमें विश्वास है कि इसके पाठसे पाठक उस समयकी समुन्नत दशाको जानकर अपने दैनिक जीवनको सफल बनानेके लिये शुभ प्रयत्नोंमें संलग्न होवेंगे और पाठिकायें अपनी बहिनोंकी पहिलेकी महत्वशाली महिमा देखकर अपनी दशाको सुधारेंगी, परंतु उन महारानी चेलनीका दिव्यचरित्र वर्णन करनेके पहले हम उसमें सफलप्रयास होनेके हेतु भगवान कुन्दकुन्दस्वामीके शब्दोंमें " चार प्रकारके देवोंके और मनुष्योंके इंद्रोंसे वंदनीक, घातिया कर्मोंको धोनेवाले, धर्मके कर्ता, तीर्थस्वरूप श्री वर्द्धमानस्वामी भगवान महावीरको नमस्कार किये लेते है। " जो स्वयं वर्द्धमान हैं उनका स्मरण अवश्य ही हमारे सामाजिक और धार्मिक प्रगतिको वर्द्धमान रूप देगा।
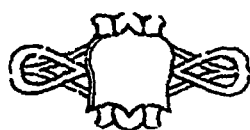
(२)

तत्कालीन राज्य और लिच्छवि–वंश

उन पूर्वजोंकी कीर्तिका वर्णन अतीव अपार है,
गाते हमीं गुण है न उनके गा रहा संसार है।
वे धर्म पर करते निछावर तृण–समान शरीर थे,
उनमें वही गम्भीर थे, वरवीर थे, ध्रुव धीर थे ॥

सर्व प्रकारके मनुष्य उत्तरमें काश्मीरसे लेकर दक्षिणमें कन्याकुमारीतक, पूर्वमें ढाकासे ले पश्चिममें करांचीतक विस्तृत हैं। इस देशमें पहिले अंग्रेज, मुसलमान, पार्सी आदि जातियोंका अभाव था, यद्यपि भगवान महावीरके समयका भारत आजके अफगानिस्तान तक फैला था। वह आजसे अनुमानत २५०० वर्ष पहिलेकी बात है। उस समयके लोग दक्षिण भारतके विषयमें बहुत कम ज्ञान रखते थे।

प्राचीन शास्त्रोंमें हमें उत्तरीय, पश्चिमीय और पूर्वीय भारतके देशो नगरोंका विवरण खूब मिलता है, परंतु दक्षिण भारतके विषयमें यह विशेषता नहीं है। उस समय दक्षिण भारत "दक्षिणापथ" के नामसे विख्यात था। आजकलके अवध, विहार और बंगाल "मध्यदेश" कहलाते थे।

इन देशोंमें रहनेवाले लोग मूल आर्यवंशज थे और उनके मध्य मुख्यतः चार वर्ण ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र थे। शूद्रोंके

अतिरिक्त चाण्डाल आदि असभ्य मनुष्य भी यत्रतत्र मिलते थे। इन वर्णोंमें क्षत्रियोंकी मान्यता उस समय अधिक थी। ब्राह्मण वर्णका एकाधिपत्य उनके समक्ष चालू नहीं था।

उपरांत क्रमशः वैश्य और शूद्रोंका स्थान था। यह वर्ण-भेद प्रारम्भसे ही समाज संगठनको लक्ष्य कर मनुष्यकी लौकिक योग्यताके सहारेसे निर्मित हुये थे। आजीविका आदिको ध्यानमें रखकर ही इनकी ऐसी व्यवस्था की गई थी।

इनसे भाव यही था कि सब लोग अपने२ योग्य कार्यको संभालकर सरल रीतिसे मिलजुलकर रह सकें। जिस प्रकार एक कुटुम्बके लोग आपसमें एक२ कार्यको अपने२ सुपुर्द लेकर कुटुंबका कार्य अच्छी तरह हिलमिल कर चला लेते हैं उसी तरह यहां मनुष्य जातिरूपी कुटुंबके विविध मनुष्य अपनी२ योग्यताके अनुसार कार्य करके उसकी व्यवस्था ठीक रख सकते हैं और प्रत्येकको इस बातका अच्छा मौका मिल जाता है कि वह अपने धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थोंका यथोचित पालन कर सकें। इसके सिवाय इस वर्णभेदसे और कोई मतलब नहीं था।

मनुष्योंमें आपसी विद्वेषभेद डालनेका भाव नहीं था। जिसके बांटका कार्य जितना गंभीर और जोखमपूर्ण था उसकी उतनी ही अधिक मान्यता थी। लोग स्वभावतः ऐसे प्रतिष्ठावान् मनुष्यकी ओर आदर-दृष्टि रखते थे; जिससे सबमें परस्पर प्रेम

था। पारस्परिक सहनशीलता यहांतक बढ़ी चढ़ी थी कि एक ही कुटुम्बमें वैदिक, बौद्ध, और जैन धर्मानुयायी रहते थे। उनमें परस्पर संबंध भी होते थे। हमारी चरित्रनायिकाका संबंध इस ही प्रकार हुआ था, यह पाठकगण आगे देखेंगे।

उस समय आजकलकी भांति सहस्रों जाति और उप-जातियोंके दर्शन नहीं होते थे। खण्डेलवाल, अग्रवाल आदि जातियां दिखाई नहीं पड़ती थीं। सर्व वर्णोंके मनुष्य परस्परमें भी विवाह संबंध आदि लौकिक व्यवहारका साधन करते थे। इस कारण उनके मध्य सहसा मनोमालिन्यके कोई कारण उपस्थित नहीं होते थे।

वे अच्छी तरह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पुरुषार्थोंका साधन करते थे। साम्पत्तिक दशा उनकी अबसे कहीं लाख दर्जे अच्छी थी। सब स्वतंत्र और स्वाधीन थे। जीवन निर्वाहके लिये उन्हें विशेष चिन्ता नहीं थी। प्रेम और शांतिका साम्राज्य था; जिसके अक्षुण्ण वातावरणमें हरकोई परलोक-साधनकी फिकरमें मस्त था।

ऐसे समयमें यहांका राज्यप्रबंध किसी एक सम्राट्के हाथमें नहीं था। जितने भी राजागण अथवा प्रजातंत्र मौजूद थे, वह सब क्षत्रियवर्णमेंसे थे। उस समय स्वतंत्रताकी लहर चहुंओर व्याप्त थी। एक ओर प्रजातंत्र अपनी स्वाधीनताका प्रभाव दिखा रहे थे। लोग पंचायती ढंगसे स्वयं अपनी राज्य

व्यवस्था कर लेते थे। यह उनका स्वराज्य था। आज भारतीय ऐसे ही स्वराज्यकी ओर लालसाभरे नेत्रोंसे देख रहे हैं। (जो मिल गया है)

दूसरी ओर पूर्वी ढंगके राजा लोग अपने क्षत्रोजको प्रकट कर रहे थे। न्यायपूर्वक अपनी प्रजाका पालन पोषण कर रहे थे। उसके सुख दुःखकी फिकर रखते थे। उसकी इच्छाओं और वांछाओंको पूरी करनेका पूरा ध्यान रखते थे। जैन, बौद्ध और ब्राह्मण ग्रन्थों एवं अन्यश्रोतोंसे पता चलता है कि उस समय भारतमें सोलह राजा अपने २ राज्यमें राज्याधिकारी थे। इनमेंके मुख्य राजाओंसे भगवान महावीरका संबंध था।

कौशल राज्यकी राजधानी श्रावस्ती अथवा अयोध्या थी। यही राज्य आजकलका अवध प्रांत है। दूसरा मुख्य राज्य मगध था जो कि आजकलका दक्षिण विहार कहा जा सकता है। इसकी राजधानी राजगृह थी तथापि वर्तमानके उत्तरीय विहारमें विदेह राज्य था, जिसकी राजधानी मिथिला थी। यह राज्य एक दूसरेसे प्राकृतिकरूपमें अलग थे। गंगानदी विदेहको मगधसे पृथक् करती थी और उसे सदानीर नदी कौशलसे अलग कर देती थी।

इनके अतिरिक्त दूरस्थ राज्योंमें उज्जैनी, कलिंग और सिंधुदेश उल्लेखनीय है। उज्जैनी आजकलका मालवा प्रांत समझा जा सकता है। यहां उस समय राजा चण्डप्रद्योतन् राज्य करता था। कलिंग देशके राजा जितशत्रु भगवान

महावीरके फूफा थे। और सिंधुदेश के अन्तर्गत सौवीर अथवा कच्छ प्रांतमें वीतभय राजधानी रखते हुये समग्र सिंधु देशपर राज्य करनेवाले नृप उद्दायन यहां सत्ताधीश थे।

यही नृप अपने सम्यक्त्व पालनके लिए जैनधर्ममें प्रख्यात हैं। इन सब राज्यों और राजवंशोंमें जैनधर्मकी मान्यता थी तथापि यह राजगण बहुधा आपसमें एक-दूसरेके निकट संबंधी थे। इस कारण बहुत करके सानंद राज्य करते थे।

दूसरे प्रकारके पंचायती प्रजातंत्र राज्य 'गणराज्य' के नामसे प्रख्यात थे। इनमें सबसे मुख्य वैशाली नगरीके चहुँ ओर रहनेवाले लिच्छवि क्षत्रिय राजा थे। आधुनिक ऐतिहासिक खोजके अनुसार भगवान महावीरका जन्म भी इन्हीं राजाओंमेंसे एकके यहां हुआ था। भगवानका पितृनगर कुण्डग्राम इन राजाओंकी राजधानी वैशालीके निकट अवस्थित था।

इनके अतिरिक्त मल्ल और शाक्यगण राज्य विशेष उल्लेखनीय हैं। मल्लवंशीय राजा हस्तिपालकी राजधानी पावापुरीसे ही भगवान महावीरने मोक्षलाभ किया था। शाक्यवंशमें महात्मा बुद्धका जन्म हुआ था।

इस गणराज्यका मुख्यनगर कपिलवस्तु था। कोलिय, भग आदि कतिपय गणराज्य और भी थे। इनमेंसे हमारा

संबंध लिच्छवि वंशसे है। इस ही वंशके राजा चेटककी पुत्रियोंमेंसे हमारी चरित्रनायिका एक थीं, जैसा कि पाठकगण आगे देखेंगे।

इस वंशके अस्तित्वका पता अबतक ईसवी सन्‌से ५३० वर्ष पहिलेसे सन ७५८ के बादतक लगा है। प्रारम्भमें इनकी राज्यधानी वैशाली थी और यह उस हीके आसपासकी भूमि पर राज्य करते थे। उस समयमें इनकी मान्यता उत्तर भारतमें विशेष थी। लिच्छवि क्षत्रियोंका एक विशाल और वीर वंश था। इनके लेखोंसे पता चलता है कि यह आर्य सूर्यवंशी क्षत्री थे।

जैन ग्रन्थोंमें इनके अधिपति राजा चेटक इक्ष्वाकु वंशीय वशिष्ट गोत्री क्षत्री बतलाए गए हैं। इक्ष्वाकु वंशके ही दो भेद सूर्यवंश और चन्द्रवंश थे इसलिए इनका मूलवंश इक्ष्वाकु ही है, परन्तु यह अन्धकारमें है कि इनकी उत्पत्ति कहांसे कब हुई।

यद्यपि यह प्रगट है कि जिस समय भगवान् महावीर इस संसारमें विद्यमान थे और अपने धर्मका प्रचार कर रहे थे उस समय लिच्छवि एक उच्च वंशीय क्षत्री माने जाते थे। वे उच्च वंशमें जन्म धारण करनेके हेतु अपनेको गर्वकी दृष्टिसे देखते थे। तथा अन्य क्षत्रीगण इनकी कन्यायोंसे विवाह करनेमें अपना मान समझते थे।

इनके रीति रिवाज, शासन प्रणाली, धर्म आदि बड़े अपूर्व

थे, जिनके कारण उनके मध्य ऐसी ऐक्यता थी कि मगधाधिपति अजातशत्रु भी इनपर सहसा आक्रमण नहीं कर सका था। इनमें जैन धर्मका प्रचार खूब रहा था जिसके प्रभावस्वरूप इनमें परस्पर प्रेम और ऐक्य था। फलतः इनकी आर्थिक दशा भी अच्छी थी, जिसने उन्हें एक प्रभावशाली राज्य बना दिया था। इनके राजसंघमें आठ अन्य वंश सम्मिलित थे, जिनकी सत्ता समस्त वज्जी या वृजी देशपर कायम थी।

इन सब देशोंके लोग बड़े दयालु, परोपकारी और सुन्दर थे। इन्हे विविध प्रकारके तेज रंगोंसे बड़ा प्रेम था। इनके नर-नारियाँ और बालक-बालिकायें अलग अलग रंगके कपड़े और सुन्दर बहुमूल्य आभूषण पहनती थीं। इनकी घोड़ेगाड़ियां, हाथीकी अम्बारियाँ और पालकियें भी सोनेकी थीं। उनकी ऐहिक दशा समृद्धिशाली और पूर्ण सुखसम्पन्न थी। परन्तु इस प्रकारकी उच्च सुखपूर्ण दशामें भी वे विलासिताप्रिय नहीं थे। आलस्य उनको छू नहीं गया था और व्यभिचारकी गंध भी उनमें नहीं दिखाई देती थी।

सब संतोषपूर्वक अपने अपने कर्तव्योंमें संलग्न रहते थे। झूटसे बिल्कुल परहेज करते थे। प्राणोंका भय होते हुये भी वे सत्यको नहीं छोड़ते थे। महिलाओंको आदरकी दृष्टिसे देखते थे। पराई वस्तुको कौड़ीके मूल्यकी भी नहीं समझते थे।

उनमें चोरीका नामनिशान नहीं था। वास्तवमें वे स्वतन्त्रताप्रिय थे और किसी प्रकारकी भी आधीनता स्वीकार करना उनके लिए सहज कार्य नहीं था।

वे उत्कृष्ट कारीगरीको खूब अपनाते थे और तक्षशिला आदि स्थानोंके सुप्रख्यात् विश्वविद्यालयोंमें विद्याध्ययन करने जाते थे। कुमारिकायें और बालाएं धर्म, विज्ञान और ललित-कलाओंमें निपुण थीं। वे आदर्श ढंगसे गृहस्थधर्मका पालन करती थीं और गार्हस्थ्यसुखका वर्धन करतीं थीं। उनके महल और देवमंदिर अपूर्व कारीगरीके दो-दो तीन तीन मञ्जिलके बने हुये थे। संक्षेपतः लिच्छवि एक परिश्रमी, धीर-वीर, न्यायपरायण, समृद्धिशाली जाति होनेके साथ ही साथ धार्मिक रुचि और भावको रखनेवाले थे।

स्वयं भगवान् महावीरका जन्म इन्हींके मध्यसे हुआ था। इनकी राजधानी वैशालीमें जैनधर्मका प्रचार भगवान महावीरके पहिलेसे विद्यमान था और ईसाकी सातवीं शताब्दी-तक उसकी प्रधानता उनके मध्य रही थी।

जब उनका चारित्रगठन ही आदर्शरूप था तब उनका राज्यप्रबंध भी अपूर्व ही होना चाहिये, और वस्तुतः वह था भी अपूर्व! उनकी राज्यप्रणाली आजकलके ढंगकी थी। प्रत्येक

नगरकी एक प्रबंधक पंचायत थी, जैसे आजकल म्यूनिसिपिल बोर्ड होते हैं।

इस पंचायतका दरबार जिस स्थानपर होता था उसको 'संथागार' कहते थे। इनमेंसे मेम्बर चुनकर गण संघमें जाते थे, जो राजा कहलाते थे। इनकी सम्मतिसे ही प्रत्येक कार्यका निर्णय होता था। आजकलकी भांति मताधिकार उनका प्राप्त था। बहुमत सर्वथा मान्य था। जो कार्य गण संघसे निश्चित हो जाता था, उसको कायमें परिणत करनेके लिए नायक, चीफ मेजिष्ट्रेट आदि थे।

यह लिच्छवियोंके सत्तासंपन्न कुलों द्वारा चुने जाते थे। इनके मुख्य राजा, उप राजा, भंडारी, सेनापति आदि थे। न्यायालयोंका प्रबंध आजकलकी भांति था, परंतु वकीलोंकी आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि न्यायाधीश स्वयं अपराधकी जांच पड़ताल करता था। अपराध निश्चित होनेपर अपराधी कानूनके जानकार 'व्यवहारिक' के सुपुर्द किया जाता था तो कानूनकी विशेष छानवीनके लिये उसे सूत्रधारके पास भेज देता था। सूत्रधार अपराधीके अपराधकी खूब पड़ताल करके और अपराध ठीक पानेपर फर्दजुर्म लगाकर उसे 'अट्ठकूलक' के पास भेज देता था। यह एक प्रकारका न्यायालय था कि जिसमें आठ कुलोंके न्यायाधीश बैठते थे। यह दोषीके अपराधसे सहमत हो गये तो दण्डविधान करके सेनापतिके सुपुर्द कर दिया। सेनापति

उसे उपराजा और राजाके समक्ष उपस्थित करता। राजा भी उसकी फर्याद सुनता और अपराधी न पाता तो मुक्त कर देता वरन् अपराधका दण्ड निर्णय कर देता।

इस प्रकार दूधपानीवत् न्यायका परिशीलन तब ही होता था। यह राज्यप्रबंध आदर्शरूप था। इसमें सब सुखी थे और सबके हकोंकी समान रक्षा होती थी। इनसे आसपासके राज्योंसे मित्रता थी।

सच है जहाँ धर्मको मान्यता होगी वहाँ सर्वोत्तम सुख भी सुलभ होंगे। सत्कीर्ति, वृद्धि, बल, ऐश्वर्य आदि सदैव धर्मात्माओंके निकट रहते हैं। आचार्य इस ही लिये धर्मको नमस्कार करते हैं। वे कहते हैं:—

'धर्मः सर्वसुखाकरो हितकरो धर्म बुधाश्चिन्वते।
धर्मेणैव समाप्यते शिवसुखं धर्माय तस्मै नमः॥"

जगत्को कल्याणकारी अव्याबाध अर्हत-जिन प्रणीत परम जैन धर्मका पालन लिच्छविगणमें सदैव होता रहा। इनके अन्त समयके अस्तित्वतक अर्थात् ईसाकी सातवीं शताब्दि तक इनमें जैन धर्मको पूज्यपना प्राप्त रहा।

वि० सं० ७११ में हुये मानगृहके लिच्छविवंश महाराज ध्रुवदेव भी संभवतः जैन धर्म-प्रेमी थे। आपको "भट्टारक-

महाराज" की उपाधि प्राप्त थी । भगवान महावीरसे उपरांत करीब ८०० वर्ष तक इनके विषयमें कुछ भी ज्ञात नहीं होता । फिर कुमारगुप्तके शिलालेखसे इनके विषयमें प्रकाश पडता है । मालूम होता है कि इनका राज्य नेपालमें भी रह चुका है । उपरांत फिर कुछ भी विवरण नहीं मिलता । अन्ततः हमें लिच्छविवंशकी प्राचीनता और श्रेष्ठता विदित हो जाती है । अब हम इनके मुख्य राजा चेटकके दर्शन करेंगे ।

(३)

वैशाली और राजा चेटक।

" सद्युक्ते सिंधुदेशे वै विशाला नगरी मताः।
चेटकाख्यः पतिस्तस्य सुभद्रा महिषी मता ॥ "

—विमलपुराण।

भगवान महावीरके समयमें वृजिदेश अपनी विशालता और स्वाधीनताके लिये प्रसिद्ध था। उस ही देशमें प्रसिद्ध नगरी वैशाली अथवा विशाला अवस्थित थी। कतिपय जैन ग्रन्थोंमें उसे विदेह (वृजि) देशमें ही बतलाया गया है। आजकलकी पुरातत्व खोजने वैशालीके खंडहर पृथ्वीमेंसे खोद निकाले हैं और वे बिहारके मुज्जफ्फरपुरके बसाढ़ग्राममें मिले हैं। इसलिये यह स्पष्ट है कि वैशाली विदेह देशमें थी। सिंधु-देशमे उसका होना लिखना किसी भ्रमवश हा कहा जासकता है। ऐसा प्रतीत होता है कि पश्चात्के लेखकोने भौगोलिक अवस्थितिका ध्यान न रखकर किसी कारणवश उसे सिंधुदेशमे लिख दिया है। उसके साथ ही कौशाम्बी आदि नगरोंको भो उसीमें जान लिया होगा। जो हो, आइये पाठकगण इस विदेहदेशकी नगरीका दिग्दर्शन करलें।

वैशाली वास्तवमें एक अति विशाल नगरी थी। उसका नाम जो वैशाली अथवा विशाला पड़ा था वह उसकी विशालताके

कारण ही पड़ा था । कालिदासने इसकी गरिमा प्रकट करनेके लिये यही कहा था कि "श्री विशालमविशालम् ।" विशाला विशाल है । वास्तवमें वह अति विशाल ही थी । चीनीयात्री मानचांग वैशालीको वीस मीलकी लम्बाई चौडाईमें बसा बतला गया था । उसके तीन कोट थे, यह भी दर्शा गया था । वही चीनीयात्री इस सारे देशको ५००० ली (अनुमानतः १६०० मील) की परिधिमें फैला बतलाता है और वह कहता है कि यह देश बड़ा सरसब्ज था । आम, केले आदि मेवेके वृक्षोंसे भरपूर था । मनुष्य ईमानदार, शुभकार्योंके प्रेमी, विद्याके पारिखी और विश्वासमे कभी कट्टर व कभी उदार थे ।

वास्तवमें यह नगर अति उत्तम और सब तरहमे भरपूर था । सुन्दर गृह और मनोहर महल उसकी शोभाको बढ़ा रहे थे । उनपरके स्वर्णकलश तथा रत्नजटित तोरणमण्डल उसको स्वर्गपुरीकी आभा देते थे । अद्भुत कारीगरी और शिल्पके अनोखे नमूने बननेवाले साहस करनेवाले गृहद्वार पथिकोंको अपनी ओर आकर्षित करते थे । बाजारों और गलियोंमें पंक्तिरूप खड़े हुये चोखने और सतखने वे भवन अपनी उन्नत फहराती ध्वजाओंसे आकाशको स्पर्श करते हुये स्वर्ग विमानोंको छूनेके लिये प्रतिस्पर्धी हो रहे थे । वहां चित्तहारी सलोने बाग और बगीचे थे । "महावन" नामक विख्यात् उद्यान अपनी सुगंधिसे सबके हृदयोंको हर लेता था । उस उद्यानमें विविध प्रकारसे नगर-

निवासी आनन्द क्रीड़ायें किया करते थे कौमुदी उत्सव मनाया करते थे।

वहांके नगरनिवासी भी चतुर, विवेकी और धर्मात्मा थे। जिस प्रकार वहांके मुहल्ले और कूचे तथा राजमार्ग स्वच्छताके प्रतिमूर्ति थे, उसी तरह वहांके नागरिकोंके हृदयोंमें मलीनता छू तक नहीं गई थी। वे जानते थे कि जिसप्रकार गलियां और कूचोंको मैला रखनेसे दुर्गंधि और रोगवर्धक जंतुओंकी उत्पत्ति होती है, उसी तरह हृदयोंको पापवासनाओंसे मलिन रखनेसे दुःख और पीडाओंकी सृष्टि होती है तथा आत्म-शुद्धताका घात होता है। इस ही कारण उनके प्रत्येक कार्य पवित्रता और विशुद्धताके आदर्श हुआ करते थे। वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पुरुषार्थोंके साधनमें सदैव तत्पर रहा करते थे।

धर्म साधनके लिये उन्होंने शिल्पके अद्वितीय नमूने मनमोहक देवमंदिर निर्मित कर रक्खे थे, जहां मुख्यकर श्री अर्हत् भगवानका अर्चन और पूजन वे अपने ही आत्महितके लिये करते थे। वे जानते थे कि भगवान तो कृतकृत्य रागद्वेषसे रहित परम शांत अवस्थाको प्राप्त हो चुके हैं। वह हमारी पूजा और भक्तिसे न प्रसन्न होते हैं और न क्षुभित होते हैं, परंतु हम स्वयं अपने आत्मकल्याणके लिये उच्च गुणोंकी प्राप्तिके हेतु उनका अभ्यास करते हैं। उनके पवित्र गुणोंमें हृदय रंजायमान होनेसे पाप प्रवृत्तिका अंश कम होता है। इस ही कारण स्वतः वह हमारे लिये सुख और आनन्दका कारण है।

भगवान न हमें कुछ देते हैं और न कुछ लेते हैं इस लिये वृथा निदान बांधना-किसी इच्छित फलकी प्राप्तिकी बाञ्छा करना वे धर्म-कार्य नहीं समझते थे और निस्पृह भावसे श्री वीतराग भगवानकी पूजा बन्दना करते थे।

भगवान महावीरके भक्तजन वैशालीमें बहुत अधिक संख्यामें थे, यह इतिहासप्रसिद्ध बात है। *साथ ही वह धर्मतत्वका वास्तविक महत्व उसकी तात्विक छानबीन करके हृदयंगम करते थे केवल प्रथानुसार लीक पीटनेमें ही मग्न नहीं थे किंतु प्रत्येक विषयका निर्णय वे न्यायकी कसौटी पर कसकर किया करते थे। विविध आचार्योंसे पृच्छायें किया करते थे। नवयुवक और कुमारिकायें ऐसे शंकासमाधानोंमें विशेष चावसे भाग लेते थे, यह उस समयके वर्णनोंसे प्रत्यक्ष प्रमाणित है। धर्मके मूल तत्वको समझकर हिंसोपार्जनका भय रखते हुये उस समयके आदर्श दम्पति गृहस्थधर्मका पालन करते थे और अर्थसिद्धिके लिये न्यायोचित साधनोंका अवलम्बन लेते थे।

व्यापारी श्रेष्ठिवर्ग देशविदेशोंमें व्यापारार्थ जाया करते थे और हिंसारहित उपकरणों द्वारा वाणिज्य किया करते थे। अपने स्वार्थके समक्ष धर्मको नहीं भुलाते थे। आजकलकी भांति सरासर यह जानते हुये कि विदेशी अथवा मिलोंका

---

*देखो रमेशचन्द्र दत्तका 'भारतवर्षकी प्राचीन सभ्यताका इतिहास' और मि० [illegible] 'Kshatriya clans in Buddhist India.”

कपड़ा बेचनेसे हिंसाका संचय होता है, क्योंकि इनमें पंचेन्द्री सैनी जीवोंके बंधसे प्राप्त चर्बीका प्रयोग होता है, तो भी धन-लाभके सामने अहिंसातत्वमय धार्मिकभावकी ओर ध्यान ही नहीं दिया जाता ! परन्तु उस समय यह बात न थी।

वैशालीके लोग धर्मनिष्ठ थे। वे संतोषपूर्वक न्यायोचित रीतिसे ही धनोपार्जन करते थे। रात होते ही सार्वजनिक पथ गाडी और रथोंकी अधिकता तथा नर-नारियोंके गमनागमनसे रहित हो जाते थे। उस समय वे गृहस्थजन वृथा वार्तालापमें समय नष्ट नहीं करते थे। प्रत्युत एकांत स्थानोंमें जाकर विविध प्रकारसे धार्मिक भावोंमें लीन होते थे अथवा कलाकौशल वर्द्धक विषयोंको चावसे सुननेमें तल्लीन रहते थे।

नगरके बाहर उद्यानादिमें अपने मित्रों व कुटुम्बके स्त्री-पुत्रों समेत वायुसेवनादि हेतु अथवा अन्य प्रकार हितकारी गोष्ठी करनेके लिये जाते थे और अपने स्वास्थ्यको उत्तम रखते थे। रात्रिके समय किसी भी खानपान, रसोई बनाना आदि गृहारंभमें समय नष्ट नहीं करते थे। काम पुरुषार्थका भी सेवन वे समुचित रीतिसे करते थे।

स्वास्थ्य विज्ञानके वे जानकार थे, इस कारण उनके योग्य प्रौढ़ वरकन्याका विवाह होता था। बाल्यावस्थामें किसीका भी विवाह नहीं होता था। इसलिये उनके शरीर बलवान और रोगरहित रहते थे। वे मात्र संतानप्राप्तिके अर्थ कामशास्त्रके

नियमानुसार गर्भाधान संस्कार करते थे। कामशास्त्रका अध्ययन करना उस समयके दंपति आवश्यक समझते थे। उसकी ज्ञानप्राप्तिमें वे लज्जा नहीं करते थे। लज्जा यदि करते थे तो विषयासक्त होनेमें—सूर्य रहते विषयभोग करनेमें अथवा वर्जितकालमें पत्नीके निकट पहुंचनेमें सदाचार और शीलका पालन करना वह अपना परम कर्तव्य समझते थे।

पुरुष परस्त्रीगामनियोंको भगीनवत् समझते थे और महिलायें परपुरुषोंको भ्रातृवत्। व्यभिचारजात संतान कठिनतासे मिलती थी। इस प्रकारके पापीको वैशालीमें जीवित रहने नहीं दिया जाता था। उसके प्राणोंकी रक्षा केवल साधु वृत्ति धारण करनेमें ही थी। आजकलकी तरह उस समयकी सामाजिक परिस्थिति ऐसी भयानक नहीं थी जो व्यभिचार समान घृणित पापवासनाको प्रचलित करनेमें सहायक होती।

विवाहक्षेत्रकी विशालता और प्रौढ़ अवस्थामें युवा वर-कन्याका संबंध होनेसे विधवायें बहुत कम होती थीं, अल्प वयमें बालिका पत्नियोंका भी वियोग नहीं होता था इसलिये विधुर भी कम होते थे, जिनके कारण योग्य कुमारोंको सारा जीवन कुमारावस्थामें ही व्यतीत नहीं करना पड़ता था।

आजकल नन्हीसी उमरमें ही विवाह बालक-बालिकाओंके किये जाते हैं, वरकी योग्यता और निरोगताकी ओर ध्यान नहीं दिया जाता है। परिणामतः आज समाजमें व्यभिचारकी

मात्रा अधिक फैल रही है। नन्हीं उमरकी विधवायें वासनामय वातावरणमें रहकर पापी पुरुषोंके पंजोंके समक्ष अपने शील-धर्मका पालन नहीं कर पातीं हैं। कुमारे नवयुवक भी अपनी दशाको संभालनेमें असमर्थ हैं। उधर अत्यंत दारुण भयानकता इसमें है कि रोगी अथवा अयोग्य वरके गले बांधी गई युवती नववधुएं अपनी वासनातृप्तिके निमित्त पाप करते नहीं हिचक रहीं हैं। सामाजिक जीवन पर कड़ी निगाह रखनेसे हमें प्रत्येक शहरमें इस बातका उदाहरण मिल जायगा।

इस प्रकारकी अधर्ममय दशाके कारण ही हमारे जीवन दुःखपूर्ण हो रहे हैं। आज हम धर्म पुरुषार्थका वास्तविक साधन करना भूल रहे हैं, अविद्यामें स्वयं ग्रसित है और अपनी माताओंको भी मूर्खा बनाए हुये हैं। बस ऐसी अवस्थामें शेष अर्थ और काम पुरुषार्थोंका पालन हम किस रीतिसे कर सकते हैं? और फिर क्योंकर हमारे वर्तमान जीवन पूर्वजोंकी भांति सुखपूर्ण बन सकते हैं? जीवन सुखी तब ही बनेंगे जब हम वैशालीके आदर्श पुरुषों और महिलाओंका अनुकरण करेंगे जिनमें धर्म प्रेम कूट कूटकर हुआ था तथा जिनमें कोई भी बालक अथवा बालिका धार्मिक एवं लौकिक ज्ञानसे शून्य नहीं थी।

वैशालीके गृहस्थजन प्रात:काल उठकर सामायिकादि धर्म साधनमें लीन हो जाते थे। फिर शौचादि नित्यकी आवश्य-

-कताओंने निवटकर श्री जिनभगवानके दर्शन, पूजन, और भजनमें समयका सदुपयोग करते थे। स्वाध्याय और धर्म-चर्चामें विशेष चारुतासे भाग लेते थे। तप और दानमें सदैव तत्परता प्रगट करते थे, मध्याह्नकालमें जब मुनिगण आहार निमित्त वैशालीमें गमन करते तो वे उनको विधिपूर्वक हर्ष और आदर सहित पड़गाह कर आहारदान देते थे। अन्य दयार्द्र पुरुषों और अन्य जीवोंपर भी करुणा रखते थे।

रोगियोंके हितके लिए औषधिशालायें स्थापित थीं। ज्ञान दानके लिये ऋषिगणोंके निकट पढ़नेवाले युवक–युवतियोंके जीवन निर्वाहका प्रबंध, वे ही करते थे। बडे बडे विद्यालय उनकी दानशीलताके परिचायक थे। सारांशतः सब ओर और सब ठौर ज्ञानका प्रसार करनेमें कुछ नहीं रखते थे, उनकी विवेकता और दयालुता इतनी बडी चढी थी कि शरण आए जीवको अभयदान देना वे अपने प्राणोंकी रक्षासे भी अधिक मूल्यमय समझते थे। सब ही अपने२ वर्णके अनुसार आजीविकोपार्जन करते थे और अपने कर्तव्योंकी पूर्तिमें अग्रसर होते थे। धार्मिक उदारतामें वे अग्रेसर ही थे कि प्रत्येक अवस्था और जातिके जीवोंके लिये उनका द्वार प्रति समय खुला रखते थे।

ऐसी अवस्थामें कि जब वे प्रारम्भसे ही धर्म अर्थ और काम पुरुषार्थोंका पालन समुचित सुचारु रीतिसे करते थे, तब मोक्ष पुरुषार्थके साधनमें वे स्वतः ही सुगमतापूर्वक

प्रयत्नशील हो जाते थे। यही कारण था कि उस समय देशके प्रत्येक भागमें मुनिजनोंके दिव्यदर्शनोंका लाभ होता था। हजारों केवलज्ञानी यत्र-तत्र विचरते हुये सच्चे आत्मसुखका रसास्वादन प्रत्येक भव्य जीवको करा रहे थे। उनसे कहीं अधिक संख्यामें आचार्य व मुनिगण संघरूपमें सर्वत्र विहार कर जीवोंको धर्मका मार्ग सुझाते थे। वस्तुतः वह सुख और शांतिका स्वर्णावसर था। वैशाली इस प्रकारके भद्र नर नारियोंकर पूर्ण अपने प्रत्येक अंगमें अद्वितीय आभाको लिये हुये थी।

इस विशाल और मनोहर नगरीके अधिपति राजा चेटक थे। यह लिच्छवि वंशमेंसे थे। इसलिए इक्ष्वाकुवंश वाशिष्ठ गोत्री क्षत्री थे। जैन शास्त्र इन्हे वैशालीका राजा बतलाते हैं; परन्तु हम पहिले देख चुके हैं कि वैशालीमें प्रजात त्रात्मक राज्य था, इस कारण यह प्रतीत होता है कि राजा चेटक वैशालीके इस राज्य-संघके सभापति होंगे। तिसपर हमें यह ज्ञात ही है कि इस संघमें सम्मिलित क्षत्रियोंके आठ कुल थे; जिनका प्रत्येक प्रतिनिधि राजा कहलाता था। इन राजाओंकी अपनी निजी सम्पत्ति सेना आदि थी इसलिये चेटक एक तरहसे वैशालीके स्वतंत्र अधिकारी थे।

राजा चेटक भी जैन धर्मके परम श्रद्धानी थे, यह जैन शास्त्रोंसे स्पष्ट विदित है। उत्तरपुराण (छंदोबद्ध टीका) में स्पष्ट लिखा है कि—

" नगर त्रिमालापुर जहि माहि, णेटक नरपत राजकराहि।
देवगुरुको विनय विशेष, ताके नार सुभद्रा देष ॥
तिनके दस सुत उपज्यौ सार, तिनके नाम सुनो चितधार।
धन अरु भद्रत्त सुकुमार, तृतोय उपेंद्रदत्त सुविचार ॥
सोहभद्र पंचम सुत जान, और कुसंभ अकंपन मान।
और सुपतंग प्रभंजन कहो, दसम प्रभास नाम इम लहो ॥"

इसके अतिरिक्त अन्य ग्रंथोंसे भी उनका दृढ श्रद्धान जिनधर्ममें प्रगट है।

वह यहांतक धर्मके दृढ़ श्रद्धानी थे कि अपनी पुत्रियोंका विवाह जैनधर्मानुयायीके साथ ही करते थे। ऐतिहासिक साक्षीसे भी प्रगट है कि वैशालीके लिच्छवियोंके यहां विवाह संबंधी कुछ नियम थे और यह नियम वही हो सकते हैं जो जैनशास्त्रोंमें बतलाये गये हैं, अतएव यह पूर्णतया प्रगट है कि राजा चेटक जैनधर्मके श्रद्धालु अनन्य श्रावक थे।

गृहस्थावस्थामें वे स्वयं भगवान महावीरके मामा थे। धर्मके मर्मको समझकर वे साम्यभावको लक्ष्यकर अपने राज्यका शासन करते थे। उनके राज्यमें हरकोई सुखी था। राज्य-करकी अधिकता नहीं थी। तिसपर भी प्रजाको आराम पहूंचा-नेका पूरा खयाल रक्खा जाता था। धीरवीर नीतिनिपुण, शस्त्र-शास्त्र-निष्णात उनराजाकी छत्र छायामें रहती हुई

प्रजाके मध्य परम मैत्री और ऐक्य थी। इसलिये उनके समक्ष कोई शत्रु टिक नहीं सकता था।

इन राजाकी रानी परम रूपवती कला-चातुर्य-प्रवीणा, शीलकी प्रतिमूर्ति ही थी। उसका नाम सुभद्रा था, जो वस्तुतः सुभद्रा ही थी। जो कोई उसके एक वार भी दर्शन कर जाता वह उसकी सौज यता, विद्वत्ता और सरल हृदयताकी भूरि भूरि प्रशंसा करता था। आलस्य उनको छू नहीं गया था। वह रानी अपने पतिदेवके उठनेके पहिले उठकर उनकी सेवामें उपस्थित हो जाती थी। उनको प्रातःकालका भान करानेके लिये उनके पगोंको अपने कोमल करोंसे दाबने लगती थी एवं प्रभाती आदि गीतोंको मृदुस्वरमें ऐसे कौशलसे आलापती कि राजा हर्षसे आल्हादित हो उठ बैठने और अपनी गुणवती प्रियतमाको शुभाशीष दे अपनी दैनिक चर्यामें लग जाते। ऐसे ही रात्रिके समय अनेक राग-रागनियों- संगीत वीणादिके हृदयहारी स्वरों द्वारा अपने कोकिलकण्ठसे वह उनके मनको मुग्ध करती थी। साथ पतिदेवकी इच्छानुसार राजोद्यानादिमें क्रीड़ायें और रतिके लिये उनके दैनिक श्रमकी थकावटको दूर कर देती थी।

राजा अपनी प्रियाके समागममें जीवनकी कठिनाईयोंको भूल जाता था। उनके सोजानेके बाद ही वह रानी सोती थी। सदैव ही उनके सुखमें अपना सुख समझती थी व उनके दुःखमें पानीसे विलग हुई तडफती मछली बन जाती थी। पतिदेवके

समक्ष अपने शृङ्गार आभूषणको तुच्छ समझती थी। आज-कलकी भांति गहनोंको ही अपना सर्वस्व नहीं मानती थी। उनको अपने निजी गुणोंमें ही अभिमान था। अपने गुणोंसे पतिदेवको रंजायमान करनेमें तत्पर रहती थी, उन्हें समयानुसार समुचित परामर्श भी देती रहती थी और विशेष रीतिसे धर्मसाधन करनेमें उन्हें उत्साहित करती थी। अपने शरीर, वस्त्रों और आभूषणोंको स्वच्छ रखती थी। पाकशास्त्रकी उत्तमता और विशुद्धताको खूब अच्छी तरह समझती थी, उसे यह अभिमान नहीं था कि मैं किस तरह रसोईघरमें जाऊं। बल्कि अपने ही हाथोंसे नाना प्रकारके स्वादिष्ट भोजन बनाकर मुनिजनोंको आहार दिया करती थीं तथा प्रेमपूर्वक अपने प्रियपतिकी संतुष्टि करती थी। सदैव जिनभगवानके पूजन भजनमें लीन रहती थी, अन्य किसी भी रागी द्वेषी, देवी, देवताकी मान्यता वे नहीं करती थीं; जिनधर्म प्रणीत सामाजिक नित्यक्रियाओंको वे रोज नियमपूर्वक किया करती थीं।

बहुधा गुणीजनों और आदर्श महिलाओंकी सत्संगतिमें समयका उपयोग किया करती थीं अथवा धर्म-कथा और काव्य ग्रन्थोंके पढ़नेमें अपने चित्तको लगाया करती थीं। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन पांच पापोंसे सदैव भयभीत रहती थीं। उनके आधीन जो प्राणी थे उनको वे सदैव सुखी बनानेके ही प्रयत्न किया करती थीं तथा अपनी संतानका यथोचित पालन करनेमें भी कुछ कसर नहीं रखती

थीं। इस प्रकारकी प्रयत्नशील शुभ दिनचर्य्याके कारण उसका शरीर निरोग रहता था। वह सदा प्रफुल्लवदन और प्रसन्नमुख रहतीं थीं। राजा चेटक उनको पाकर और भी अधिक शोभाको प्राप्त हुआ था। अपनी इस परमप्रिय अर्द्धांगिनीके साथ वह सानंद कालयापन करता था। पूर्वोपार्जित धर्मका मधुर फल ही वह साक्षात् भोग रहा था।

इस परम रूपवती और विदुषी रानी सुभद्राकी कुक्षिसे उत्पन्न दस पुत्रोंके साथ२ सात पुत्रियां थीं, जो कि 'बिंबा फलके समान लाल ओठोंकी धारक थीं और कामदेवकी परम प्यारी थीं।' सबसे बड़ी पुत्रीका नाम प्रियदत्ता था। उससे छोटी कन्या मृगावती थी। मृगावतीकी छोटी बहिन वसुप्रभा थी। उससे लघु पुत्रीका नाम प्रभावती था। प्रभावतीकी क्रमशः लघु भगनियां ज्येष्ठा, चंदना और चेलनी थीं। इन सबका पालन पोषण विशेष रीतिसे हुआ था और यह परस्पर प्रेमपूर्वक रहती हुई धर्मज्ञानकी जानकार थीं और लौकिक शिक्षामें भी उन्होंने अच्छी तरह योग्यता प्राप्त की थी। इनमेंसे पहिली चार पुत्रियोंके विवाह उनके युवावस्था प्राप्त करनेपर विविध देशोंके जैनधर्मी राजाओंके साथ हो गये थे।

प्रथम प्रियदत्ता अथवा त्रिशलाका विवाह कुण्डग्रामके नाथवंशीय काश्यपगोत्री राजा सिद्धार्थसे हो गया था। इन्होंने कौमारावस्थामें किस प्रकार उच्च कोटिकी शिक्षा ग्रहण की थी यह इनके उन प्रश्नोत्तरोंसे प्रमाणित है जो इन्होंने तीर्थंकर

भगवानको गर्भमें धारण करते हुये देव सेविकाओंसे किया था। यह महाराणी इतनी विशिष्ट पुण्यवती थी कि स्वयं इनके ही गर्भमें अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीरका जन्म हुआ था। दूसरी पुत्री मृगावतीका विवाह वत्स देशके कौशांबीपुरके स्वामी महाराज नाथ, मार अथवा पिनाकके साथ हुआ था। तीसरी कन्या वसुप्रभाका विवाह दशार्ण देशके हेरकच्छपुरके स्वामी सूर्यवंशीय राजा दशरथके साथ हुआ था और चौथी कन्या प्रभावती कच्छदेशके शेशकपुरके स्वामी महातुर अथवा महानुदयी (उदयन) को विवाही गई थीं। शेषकी तीन कन्यायें अभी कुमारी ही थीं। इनमेंसे एककी याचना गांधार देशके महापुरके राजा महिपालके पुत्र सात्यकीने की थी संभवतः बौद्धोंके जातक कथानकके गांधार देशके राजा बोधिसत्त ही यह सात्यकी हैं। इन सात्यकीकी याचनाको राजा चेटकने स्वीकार नहीं किया जिसके कारण वह दीक्षा ले गया। इस कारण इस समय तक ये कन्यायें अपनी कौमारावस्थामें काल-यापन कर रही थीं।

इनही तीन राजकुमारियोंमेंसे छटवीं कुमारी चेलनीका ही दिव्यचारित्र लिखनेका साहस इस पुस्तकमें किया गया है, अतएव हमें विश्वास है कि उपर्युक्त वर्णनसे पाठकगण कुमारी चेलनीके माता-पिता और जन्म संबंधी वार्तासे वाकिफ होगये हैं। अब आइये देखें इन कुमारी चेलनीने अपना कौमारकाल किस प्रकार व्यतीत किया था।

(४)

चेलनीकी कौमारावस्था

" Beauty is the joy of life "

—*Keats*

सौन्दर्य जीवनका सुख है । सौन्दर्य ही शरीरके रोम-रोममें विश्वविजयनी शक्तिका संचार करनेवाला है । सौन्दर्य रसको पान करके गुणीजन हर्षसे पूरित हो जाते हैं । उनकी आत्मामें एक अपूर्व आल्हाद इस सौन्दय रसपानसे उत्पन्न होता है, परन्तु क्या केवल नेत्रोंका प्रिय सौन्दर्य ही गुणि-जनोंके हृदयोंका चितचोर बननेका कौशल रखता है ? क्या किन्शुक फूल अपने तेज रक्तमय सुनहरे वर्णसे प्रेमीजनोंका प्रिय हृदयभाजन बन सकता है ? नहीं, जो सच्चे पारखी हैं वे सुगंधि रहित सुन्दर पुष्पकी ओर मुंह भी नहीं फेरते । वे जानते हैं कि यह तो दिखावटी दृश्य है, असलियत कुछ नहीं, मनमोहक गंभीर कालेर बादलोंमें चमकनेवाली बिजलीकी तरह क्षणिक है । इसलिये सौन्दर्यका यदि मूल्य है तो उपर्युक्त गुणोंके साथमें । गुणोंके अभावमें सौन्दर्य कौड़ी मोलका नहीं । गुण है तो सौन्दर्य है । गुण नहीं तो कुछ भी नहीं, इसलिये गुण ही वास्तविक सौन्दर्य है, यह ऋषिगणोंका महत् सत्वाक्य है ।

कुमारी चेलनीका सौन्दर्य दिखावटी नहीं था। वह विशिष्ट गुणों सहित रतिके रूपको भी चिनौती देता था। कुमारी चेलनी सुभद्रा माताकी कोखमें अवतीर्ण हो, समुचित लालन पालनको पाकर शैशवावस्थाको पार कर आई थीं। बाल्पनेमें उनका भरणपोषण बड़ी देखभाल और चावसे होता था। उनका माथा जरा भी दरद करने लगा कि माता विह्वला बन गई, पिताने झट राज्यवैद्य बुलाया और उनकी उचित शुश्रूषा होने लगी। कन्या होनेके कारण आजकलकी भांति उनको हेय दृष्टिसे नहीं देखा जाता था। उनको पराये घरकी चीज समझकर दुरदुराया नहीं जाता था, प्रत्युत उनमें उतना ही प्रेम और आदर रक्खा जाता था कि जितना एक पुत्रमें होसक्ता है। क्योंकि उस समय पितृगण जानते थे कि यदि हम अपनी पुत्रीको बुरी तरहसे रक्खेंगे, उसके पालनपोषणमें और शिक्षा-दिक्षामें कोरकसर रखेंगे तो आखिर दूसरे घरकी पुत्री हमारे यहां आवेगी वह भी इसी तरह ज्यों त्यों करके स्यान बना भेजी जायगी, जिससे गृहस्थ धर्मका पालन यथोचित रीतिसे नहीं हो सकेगा। इसलिये कन्याका भरणपोषण अच्छी तरह होता था। उसकी शिक्षा-दिक्षाका पूर्ण प्रबन्ध था। तिसपर कुमारी चेलनी राज्य घरानेकी पुत्री थीं। उनकी रक्षा-शिक्षाकी कितनी उत्कृष्ट संयोजना होगी, यह सहज समझी जासक्ती है।

नीति-निपुण महाराज चेटक और धर्मविज्ञ शीलवती महारानी सुभद्रा हर तरह अपनी प्यारी पुत्रियोंकी भलाईका

ध्यान रखती थीं। इन सुशील और सुरक्षित दम्पतिकी संतान नि:संदेह ही इनकी सद्व्यवहारकी मुद्रासे अंकित थी। जिस प्रकार यह सत्यवादी, प्रियभाषी और सबको सुखके कारण थे उसी प्रकार इनकी यह कन्यायें थीं। यह तो प्राकृतिक नियम है कि पैतृक संस्कृति संतानमें अवश्य आती है। लोकमें भी कहा जाता है कि—

'जैसे जाके मातापिता तैसे ताके सुत–सुता'

फिर भला ये कन्यायें अपनी विदुषी माताकी साक्षात् प्रतिमूर्ति क्यों न होतीं। इस स्वाभाविक नियमसे माता-पिता-ओंके लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वे अपनी संतानके चरित्रगठनपर पूरा ध्यान रक्खें।

वस्तुतः यह माता–पिताके ही हाथमें है कि वे अपनी संतानको चाहे सुपात्र बनायें और चाहे कुपात्र सिरजकर दुःखका कारण बनालें। इस ही कारण माता–पिताको छोटे छोटे बच्चोंके सामने कभी भी ऐसी क्रियाएं नहीं करना चाहिये जिनको संसार बुरा कहता हो। छोटे छोटे अबोध बालकोंके सन्मुख कभी भी किसीसे दुर्वचन नहीं कहना चाहिये न कभी किसीको गाली देना चाहिये। उन कोमल हृदयवाले बालकोंके सामने किसीसे भी दुर्व्यवहार नहीं करना चाहिये, किसीको तकलीफ नहीं देना चाहिये, किसीको डराना, मारना नहीं चाहिये।

जो माता-पिता बालकके चरित्रगठनको ओर ध्यान नहीं देते तो उनकी इस लापरवाईके कारण उनकी संतान डरपोक, कायर, आलसी, बुरे-मंद वचन कहनेवाली हो जाती है। उनकी बोली बिगड जाती है और उनमें खानेपीने, खेलने-कूदने और मारने पीटनेकी बुरी आदतें पड़ जाती हैं जिनके कारण सब लोग उनको हमेशा बुरा कहते रहते हैं। इसलिए माता-पिताओंको बचपनसे ही बच्चेको सदाचारी बनानेका खयाल रखना आवश्यक है।

कुमारी चेलनी जब करीब ६-७ वर्षकी हुई तब अपनी अन्य बहिनोंके साथ एक योग्य पंडिता आर्यिकाको विद्याभ्यासके लिए सौंप दी गई। इन धर्मात्मा पंडिताके पास वह बड़े चावसे विद्या पढ़ती थीं। जिसके फलरूप थोड़े ही समयमें वह धर्म, गृहस्थ और साहित्य सम्बन्धी शास्त्रोंकी अगाध पंडिता हो गई। धर्मशास्त्रोंके अध्ययनसे वह वास्तविक तत्त्वोंकी और यथार्थ मोक्षमार्गकी जानकार हो गई। वह बचपनकी पड़ी हुई आदतके अनुसार नित्य ही श्री जिनेन्द्रकी भक्ति, पूजन, अर्चन, शास्त्र-स्वाध्याय, दान, व्रत, उपवास आदि धर्माचरणोंको बड़े प्रेमसे करती थी।

सत्य है, बचपनमें जिस बातका विश्वास हृदयपटलपर अंकित हो जाता है वह फिर हटाये नहीं हट सकता। बच्चेकी कोमल बुद्धिपर जिस प्रकार धर्मभाव दृढ़ताके साथ अंकित किये

जा सकते हैं वैसे अधिक वयमें हरगिज नहीं जमाये जा सकते। बचपनमें पडे हुये संस्कार कौमारावस्थामें और भी दृढ़ हो जाते हैं और वे ही युवावस्थामें उनके दैनिक आचरण बन जाते हैं। इसलिये यदि संतानको धर्मात्मा बनाना हो तो उसे सबसे पहिले धर्म-शिक्षा देवें और धर्माचरणका अभ्यास डलावें। बचपनके दृढ़ धर्माचरणके अभ्यासके कारण ही कुमारी चेलनी शेष जीवनमें पूर्ण धर्मपरायण रहीं थीं।

धर्म शिक्षाके साथ साथ ही वह गृहस्थ कर्मकी आवश्यक क्रियायोंमें निपुण हो गई थी। पाकशास्त्र और शरीर विज्ञानको अच्छी तरह जान गई थी। स्वच्छता और पवित्रताके महत्वको समझ गई थी जिसके कारण वह प्रत्येक गृहकार्य बड़ी सफाईके साथ सदैव नियत समयसार क्रिया करनेमें चतुर थी। साथ ही साहित्यके प्रत्येक अंगमें भाषा, गणित, व्याकरण, छन्द, इतिहास, भूगोल आदिमें पूर्ण पारगामी हो गई थी। इनके अतिरिक्त वह चित्रकला, शिल्प, शिशुपालन, गान, नृत्य, वीणावादन, पुरुष परीक्षा, रत्न परीक्षा वाहानारोहण, नदी तरण, शस्त्रविद्या आदिमें निष्णात् थी। शास्त्रोंमें बताई हुई स्त्रियोंकी ६४ कलाओंका ज्ञान इसने अच्छी तरह प्राप्त कर लिया था, वस्तुतः जिसके ज्ञानावर्णी कर्मका क्षयोपशम विशेष होता है वह सहजमें सर्व विद्याओंको प्राप्त कर लेता है।

कुमारी चेलना आजकलकी महिलाओंकी भांति मन्दज्ञानी

नहीं थी कि जिनको आज मामूली विद्याभ्यास भी नहीं कराया जाता है, आवश्यक धर्मज्ञान भी नहीं बताया जाता है और गृहप्रबंध तथा शिशुपालनकी योग्यता भी नहीं सिखाई जाती है, आज पुरुषवर्ग इतना अन्ध श्रद्धानी और धर्मसे रहित हो गया है कि वह अपने उपास्यदेवके वचनोंको उल्लंघन कर रहा है।

भगवान ऋषभदेवने इस युगके प्रारंभमें सर्व प्रथम अपनी दोनों कन्याओंको ही विद्याभ्यास कराकर लौकिक शिक्षाका प्रचार किया था। उन्हे प्रत्येक विद्यामें पूर्ण परिणत बनाया था, परन्तु हाय, आप उनके अनुयायी उनकी इस आज्ञाके विमुख आचरण कर रहे है। यही परम दुःखका विषय है।

आज पुरुषगण महिलाओंको विद्या पढ़ाना आवश्यक नहीं समझते। कतिपय सज्जन उन्हें मामूली अक्षरज्ञान करा देना पर्याप्त समझते हैं, परन्तु इससे उनकी आत्माओंका कुछ भी लाभ नहीं होता। बिना पूर्ण ज्ञानवान हुए उससे कुछ भी लाभ नहीं उठाया जा सकता। जगत्प्रसिद्ध है कि "अधजल गगरी छलकत जाय" अथवा 'नाम हकीम खतरये जान नीम मुल्ला खतरये ईमान' अतएव महिलाओंको पुरुषकी भांति पूर्ण ज्ञानवती बनाना परमावश्यक धार्मिक कर्तव्य है। यदि महिलायें उच्च प्रकारकी शिक्षा प्राप्त करना चाहें तो इसमें भी पुरुषोंको कुछ आपत्ति नहीं होना चाहिये।

कुमारी चेलनीका ही उदाहरण हमें इस प्रकार आचरण

करनेका पाठ पढ़ा रहा है। बहिनोंको स्वयं ज्ञानवती बनना चाहिये और अपनी संतानको बनाना चाहिये।

सारांशतः कुमारी चेलनी थोड़े ही समयमें विद्याकी खानि हो गई थीं। उसमें स्वभावतः एक अपूर्व प्रतिभा दिखने लगी थी। उसका सुन्दर मुखमण्डल अब एक अपूर्व प्रभुताको प्रगट करता था। वह पहिले ही परम रूपवती थी। अब प्राकृतिक गुणोंको प्राप्तकर उसका सौन्दर्य और भी अधिक प्रकाशमान हो गया था। वह पहिले ही गंभीर नाभिकी धारक, कृशोदरी, प्रौढ़ और उन्नत नितंबवाली, बिंबाफलके समान ओष्टवाली, कामदेवकी आनंदभूमि, विशालहृदयको धारण करनेवाली, चन्द्रमुखी एवं साक्षात् सरस्वती सरीखी थी, परंतु अब वह सुन्दरतामें रति, शोभामें लक्ष्मी, विद्यामें सरस्वती, धैर्य्यमें धृति, सुयशमें कीर्ति, लज्जामें ह्री हा हो रही थी। इस कारण रति, लक्ष्मी, धृति, कीर्ति आदि दासियोंके लिये वह मत्सरका कारण हो गई थी।

इस प्रकार वह ज्ञानवती कुमारी चेलनी सदैव धर्माचरणमें लीन रह कालयापन कर रही थी। ज्यों चन्द्रकलाकी वृद्धि होती है त्योंही उसका सुन्दर शरीर विकसित होता जा रहा था और वह पूर्ण युवावस्थाको प्राप्त होती जा रही थी। राजा चेटक और रानी सुप्रभाको अपनी कन्यापर गर्व था, वह उनके लिये आनंदकी सामग्री थी। जो मातापिता अपनी संतानको

अपने लिये आनंदका कारण बनाना चाहते है उन्हें चाहिये कि वे अपने पुत्र पुत्रियोंको समान रीतिसे कुमारावस्थामें ही सच्चे धर्मका ज्ञान करावें और फिर समुचित योग्यतानुसार एव संतानकी प्रवृत्ति अनुसार व्यावहारिक ज्ञान भी दिलावें। सच्चे शास्त्रज्ञानसे संतानका श्रद्धान सच्चे देव, सच्चे शास्त्र व सच्चे सात तत्वोंपर इस प्रकार दृढ़ हो जावेगा कि फिर वे कभी भी मिथ्यात्वको सेवन नहीं करेंगे। कन्यायें गृहस्थावस्थामें प्राण जानेपर भी कुदेव, कुगुरु और कुधर्मकी भक्ति नहीं करेंगी। पुत्र कभी भी अंग्रेजी आदि लौकिक विद्या पढ़कर धर्मशून्य नहीं होंगे। वह सुपात्र संतान बनेंगे, जिनको देखकर कर मातापिताके ही हृदय हर्षायमान हों सो नहीं प्रत्युत जो उनको देखेगा वह आनंदित होगा और उनके मातापिताओंको सराहेगा। कुमारी चेलनीका चारित्र इस ही प्रकार सर्वप्रिय था। वह कौमारावस्थामें आनंदसे कला-कौशल और काव्यादि मनन तथा धर्मसाधनमें दिन व्यतीत कर रही थी।

(५)

सम्राट् श्रेणिक

"तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबूदीवे दीवे भारहेवासे दाहिणड्ढभरहे रायगिहे नामं नयरे होत्था गुणसिलए चेइए ॥ तत्थणं रायगिहे सेणिए नामं राया होत्था ॥ तत्स णं सेणियस्स रण्णो नदा नामं देवी होत्था ॥ तस्सणं सेणियस्स रण्णो पुत्ते नंदाए देवीए अभए नामं कुमारे होत्था अहीण जावसरूवे, सेणियस्स रण्णो सव्वकज्जेसु लद्धपच्चए, तस्सरज्जं च रट्ठं च कोसं च कोट्ठागारं च बलं च बाहणं च पुरं च अंतेउरं च सयमेव समुपेक्खमाणे विहरई ॥" Nayadhammakahı

उस समय भी मध्यलोकके असंख्यात द्वीपसमूहके मध्यभागमें एक जम्बूद्वीप नामक प्रसिद्ध द्वीप था। उस द्वीपके बीचोंबीच अति शोभायमान, अनेक चैत्यालयोंसे व्याप्त तथा रमणीक वनोंसे अलंकृत सुवर्णमयी तेजको रखनेवाला एक लाख योजन ऊंचा एक सुन्दर सुमेरु पर्वत भी था, जैसे कि वह अब भी विद्यमान है। इस ही मेरुपर्वतके दक्षिण भागमें भरतक्षेत्र है जिसके आर्यखण्डमें आर्यलोग निवास करते हैं। इस ही आर्यखण्डमें वैशाली, वत्स, मगध आदि प्रसिद्ध देश उसकी नाभिवत् शोभाको प्राप्त थे। आजके भारत, चीन, जापान, योरूप, अमेरिका आदि क्षेत्र इस ही आर्यखण्डके

अन्तर्गत ही समझना चाहिये । वैशाली और वहांके राजारानीके विषयमें हम ऊपर वर्णन कर चुके हैं । अब हम यहां सम्राट् श्रेणिकके विषयमें भी दिग्दर्शन प्राप्त करेंगे, क्योंकि कुमारी चेलनीके दिव्य चरित्रका संबंध इन सम्राट्से है ।

यह सम्राट् श्रेणिक मगधके सत्ताधीश थे । भारतके विषयमें अबतक जो ऐतिहासिक खोज हुई है, उनसे यही प्रमाणित हुआ है कि सम्राट् श्रेणिक ही भारतके सब प्रथम ऐतिहासिक राजा थे । यह आज अनुमानतः २६०० वर्ष पहिले यहां राज्य करते थे । इनका राज्य मगधदेशमें व्याप्त था । अपने पूर्वजोंसे प्राप्त प्रदेशको इन्होंने अपने बाहुबलसे विस्तरित किया था । मगधदेशके विषयमें शास्त्रोंमें अपूर्व वर्णन है । एक आचार्य लिखते हैं—

"हारके मध्यभागमें जिस प्रकार हीरा रत्न मनुष्योंके चित्तको रंजायमान करनेवाला होता है उसी प्रकार भरतक्षेत्रके मध्यभागमें मगधदेश भी मनुष्योंके चित्तको आनन्द प्रदान करनेवाला है । यह मगधदेश घोष, मटंब, कर्वटोंसे, अनेक प्रकारके वाहनोंसे, बडे बडे गांवोंसे और बडे२ शहरोंसे व्याप्त है एवं अनेक प्रकारकी मनोज्ञ२ चीजोंका खजाना है । इस देशके अंदर बड़ी२ विशाल नदियां है जो कि निर्मल जल और महामनोहर कमलोंसे शोभायमान हैं एवं राजहंस चकोर और सारस आदि पक्षियोंके मनोहर शब्दोंसे शब्दायमान हैं ।

इसी देशमें एक गांवसे उडकर कुक्कुट दूसरे गांवमें जा सकें, इस रूपसे बिल्कुल पास२ बसे हुये गांव हैं और उसके तालाव प्याऊ पथिकोंके मनको संतुष्ट करनेवाले महामनोहर जान पड़ते हैं। इस मगधदेशके अंदर महामनोज्ञ सीधे वृक्षोंकी पंक्तियां विद्यमान हैं जो कि नाना प्रकारकी लताओंसे व्याप्त हैं, घूमते हुये भौंरोंकी मधुर भुनभुनाहटसे चित्तको हरण करनेवाली हैं एवं कोकिलाओंकी मीठी२ ध्वनियोंसे शोभायमान हैं।

इस देशके धनी मनुष्य स्वभावसे ही दानी हैं—आहार आदि किसी भी दानका अवसर देख कभी भी उससे मुंह मोड़नेवाले नहीं हैं, अत्यंत धर्मात्मा हैं, सदा सत्य बोलनेवाले हैं, एवं मोक्षलक्ष्मीकी अभिलाषासे सदा ध्यानी और ज्ञानी हैं।

इसी मगधदेशके अंदर एक राजगृह नामका नगर है जो कि परम पवित्र है, उत्कृष्ट है, सदा अनेक प्रकारकी ध्वजाओंसे शोभायमान रहता है। अतएव अपनी दिव्य शोभासे यह इंद्रकी राजधानी स्वर्गलोककी उपमा धारण करता है। उस समय यह नगर अनेक प्रकारके धान्योंसे व्याप्त था। इसमें रहनेवाले मनुष्य परम धर्मात्मा थे। नाना प्रकारके कार्य और कौशलोंके परगामी थे एवं प्रत्येक कामके करनेमें बड़े उत्साही थे। इसीलिये वे राजगृहपुरकी शोभास्वरूप थे। राजगृहपुरकी रहनेवाली सुन्दरियां भी कामदेवसे देदीप्यमान अंगकी धारक थीं, हरिणियोंके समान नेत्रोंवाली थीं, कोकिलाओंके समान सुरीली

थीं, विशाल स्तनोंके भारसे आगेको कुछ झुकी हुई थीं, मंदर चलनेवाली थीं, अत्यन्त शीलवती थीं, दान पूजा आदि जितने भी कार्य हैं उनमें लीन थीं। वे जितनी भी क्रियायें करती थीं व्रत और आचारके अनुकूल करती थीं। इसलिये उनकी सारी क्रियायें निर्दोष होनेसे अत्यंत मनोहर होतीं थीं तथा राजगृहपुरमें नरनारियोंका विशेष जमघट्ट था।"

(विमलपुराण ९-१०)

इस महामनोहर नगरके राजा श्रेणिक थे। "उन्होंने अपने दीप्त प्रतापसे सूर्यको जीत लिया था। मुखकी सुन्दरतासे चन्द्रमाको नीचा कर दिया था। बुद्धिसे इंद्रके गुरु बृहस्पतिको हरा दिया था एवं समस्त वैरियोंको जीत लिया था, इसलिये वे अत्यंत शोभायमान थे। तथा मगधदेशके स्वामी वे महाराज श्रेणिक, राजा, मंत्री, मित्र, खजाना, देश, किला और सेनारूप राज्यके सात अंगोंसे वेष्टित हो उत्तम राज्यका इच्छानुसार भोग करते थे। वे मनोहर थे, सुवर्णके समान कांतिवाले थे, याचकोंको सुवर्णका दान देनेवाले थे। उनके हाथी, घोड़े सुवर्णके भूषणोंसे भूषित थे। शत्रुओंसे वे न्यायानुकूल कर लेते थे, मोक्षकी सदा अभिलाषा रखते थे। सुपात्रोंको अच्छी तरह दान देनेवाले थे, धर्मरूपी अमृतको सदा पीनेवाले थे। सज्जनोंको सदा प्रसन्न करनेवाले थे, जो बात अहितकारी होती थी उसका सदा खंडन करते थे।" गर्ज यह कि एक शासकके सर्व गुणोंकर वे संपूर्ण थे।

राजगृहमें प्राचीन कालमें जरासिंधु नामक महा सम्राट् राज्य करता था। कहते हैं कि उन्हींकी संतानमें एक शिशुनाग नामक क्षत्रीयवंशी राजा था। स्मिथसाहबने इसका राज्यारोहण काल वि० सं० से ५८५ (ई० सं० से ६४२) वर्ष पूर्व माना है और लिखा है कि पहिले यह काशीका राजा था परन्तु उपरान्त इसने राजगृहमें अपना राज्य जमाया था। इसहीके वंशमें सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार पांचवें राजा थे।

सम्राट् श्रेणिकके पिता उपश्रेणिक अथवा क्षत्रौजस थे। इनकी माताका नाम इन्द्राणी था। सम्राट् श्रेणिकको युवावस्थामें ही इनके पिताने देशनिकालेका दण्ड दिया था। बात यह थी कि इसके पिता एक राज्यच्युत भीलोंके राजाकी कन्यासे इस शर्तपर विवाह कर लाये थे कि उसके पुत्रको ही राज्याधिकारी बनायेंगे, परन्तु वास्तवमें राज्यके उचित अधिकारी श्रेणिक ही थे। बस अपनी वचनपूर्तिके लिये सम्राट् उपश्रेणिकने श्रेणिकको देशबहार कर दिया था।

श्रेणिक राजगृहसे निकलकर नंदिग्रामके बौद्धमठमें जाकर ठहरे थे और वहांके बौद्धाचार्यके अतिथि रहे थे। बौद्धगुरुके उपदेशसे अन्ततः उन्होंने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया था। वहांसे एक वणिक सेठके साथ श्रेणिक वेणातडाग नामक नगरमें पहुँचे थे। मार्गमें इस सेठसे श्रेणिकका कौशलपूर्ण गूढ वार्तालाप होता गया था, जिसको समझनेमें वह असमर्थ था। उस सेठने

अपने घरपर पहुँचकर अपनी परमसुन्दरी युवती कन्यासे इस वार्तालापका उल्लेख किया था। वह नन्दश्री नामक कन्या परम रूपवती और विदुषी थी। वह पिताके मुखसे सब हाल सुनकर ताड़ गई कि जो कोई सज्जन पिताके साथ आया है वह अवश्य ही नीतिनिपुण और विशेष बुद्धिमान है। यह अनुभव कर उसके हृदयमें श्रेणिकके दर्शन करनेकी अभिलाषा हुई।

उसने अपने पितासे श्रेणिकका पता पूछा और अपनी चतुर सहेलीको श्रेणिकके पास भेजा। सहेलीने श्रेणिकसे सेठके घरपर चलनेका आग्रह किया। तथा जिस प्रकार नन्दश्रीने बतलाया था उसी प्रकार वह श्रेणिकको मार्ग बतला आई।

श्रेणिक अपने बुद्धि-बलके कौशलसे वणिक सेठके द्वारपर पहुंचे थे। द्वारका अग्रभाग कीचड़से भरा हुआ था, उसे देख विस्मित हुये क्योंकि नगरके किसी भागमें भी कहीं किचड़ नहीं दिखाई पड़ती थी। इसलिये उन विचक्षण-बुद्धि श्रेणिकने समझ लिया कि इस कीचड़के यहां होनेमें कुछ रहस्य है। घरके भीतर पहुंचनेके लिये कुछ कुछ दूरपर पत्थर डालकर रास्तासा बना दिया गया था। वह ताड़ गये कि मेरी परीक्षाके लिये ही यह सब रचना रची गयी है। बस वह पत्थरके टुकड़ोंपर होकर नहीं गये, क्योंकि यदि वह ऐसा करते तो नीचे कीचड़ होनेकी वजहसे गिर पड़ते और लोक हंसाई होती। वह सीधे कीचड़मे होकर नन्दश्रीके दरवाजेके भीतर दाखिल हो गये।

श्रेणिकके इस तीव्र कौशलको देखकर नंदश्रीने मन ही मन उनके कौशलकी सराहना की एवं दिल्लगीसे फिर भी कुमार श्रेणिककी बुद्धिकी परीक्षाके लिये नंदश्रीने अंजुलीप्रमाण जल उनके पैर धोनेके लिये सखीके हाथ भेजा, कुमार उन थोड़ेसे जलको देखकर मनही मन विचारने लगे कि मेरे साथ जो दिल्लगी हो रही है वह इसी नंदश्री द्वारा की जा रही है। खैर, उन्होंने बांसकी फच्चट लेकर शीघ्र ही सारी कीचड उतार डाली और उस थोडेसे जलसे अपने पैर धो डाले।

कुमारकी इस प्रकार बुद्धिमानी देख नंदश्रीने मन ही मन उन्हें अत्यन्त चतुर समझ लिया, बडी खुश हुई एवं अपनी सखीसे यह कहा कि कुमारको भोजनके लिये लिवा लाओ। नन्दश्रीके कहे अनुसार सखीने कुमारको भोजनके लिये बुलाया।

मनोहर अंगका धारक एवं राजलक्षणोंसे शोभायमान वह कुमार भी क्रीड़ापूर्वक नंदश्रीके पास आ गया एवं जिस प्रकार अतिथि आकर बैठा जाता है उस प्रकार आकर बैठ गया। अतिथिका जिस रूपसे स्वागत करना चाहिए, नंदश्रीने बडे उत्साहके साथ उनका स्वागत किया एवं मनोहर वचनोंमें वह इस प्रकार कहने लगी—"महानुभाव! आइए, इस आसनपर विराजिये और इच्छानुसार भोजन कीजिए।"

शुद्ध हृदयवाली नंदश्रीके ये मनोहर वचन सुन कुमारने

कहा—"चकोरके समान नेत्रवाली मनोहरांगी ! संसारमें तुम बडी चतुर सुनी जाती हो, मैं भी कुछ चतुरताका अभ्यास रखता हूँ—मैंने आज यह प्रतिज्ञा की है कि मेरे पास बत्तीस चांवल हैं सो यदि केवल उन्हींसे घी और शाक आदिसे परिपूर्ण मेरे लिये भोजन तैयार किया जायगा तो मैं उसे खाऊंगा, बीच नहीं खा सकता । सुवर्णके समान प्रभावशाली गौरांगी ! यदि तुम इस रूपसे भोजन तैयार कर सको तो मैं खा सकता हूं ।" कुमार श्रेणिक जिस समय यह कह रहे थे, विशिष्ट आनन्दसे उनकी वाणी कुछ२ स्खलित निकलती थी । चतुर नन्दश्री स्खलित वाणीसे उनके मनका अभिप्राय समझ कहने लगी—"कृपाकर उन बत्तीस चांवलोंको दीजिये मैं अभी आपके लिए मिष्ट और मनोहर भोजन तैयार करती हूं ।" कुमारने उसी समय बत्तीस चांवल दे दिये । कुमारी नंदश्रीने शीघ्र उन्हें पीसकर पुवे बनाये और सखीको बुलाकर उन्हें बाजार बेचनेके लिए भेज दिया ।

वह सखी भी बड़ी चतुर थी । जहां ज्वारियोंका अड्डा था वहां पहुँची । ज्वारी लोग कपड़ा बिछाकर जिस समय जूआ खेलना प्रारम्भ करने लगे उस समय उस सखीने इस प्रकार मनोहर वचनोंमें कहा—"देखो भाइयों ! ये पूवे जो मैं लाई हूं देवमयी हैं । जो महानुभाव इन पूवोंको खावेगा वही उत्तम ज्वारी इच्छानुसार धन उपार्जन करेगा इसमें किसी

बातका संदेह नहीं।" ज्वारियोंको कल कहां! बडे आग्रहसे शीघ्र ही उन्होंने पूवे खरीद लिये। मुंहमांगा धन दिया एवं उस धनको लेकर वह सखी शीघ्र ही अपने घर आ गई। कुमारी नन्दश्रीने उस द्रव्यसे पूवा, खीर आदि शीघ्र ही उत्तम व्यंजन तैयार कर दिये। कुमारको उनकी इच्छानुसार भोजन करा दिया एवं भोजनके बाद तांबूल देकर उन्हे संतुष्ट कर दिया। +उपरांत आचार्य कहते हैं कि—

नंदश्री रंजिता तेन गत्या वाचा स्मरे क्षणैः।
ददर्श व्याकुलीभूत्वा कामबाणादिन्नाहितं ॥ १७० ॥
स्वांगं सा दर्शयत्येव कपोलौ दर्पणाविव।
ईषद्धास्येन दंताश्च मुक्तामणि च यानि च ॥ १७१ ॥
अन्योन्यं तौ च कामांगौ परं प्रेम प्रजग्मतुः।
इंद्रदत्तोऽनुरक्तां तां ज्ञात्वा तस्मै ददौ मुदा ॥ १७२ ॥
श्रेणिकोऽपि तथा सार्कं रेमे राजसुखः सुखं।
रोहिण्या सीतया नाग्या चंद्रामधरेशवत् ॥ १७३ ॥

अर्थात्—"कुमार श्रेणिकने अपनी मनोहर गतिसे मिष्ट वचनोंसे और तिरछी चितवनसे कुमारी नंदश्रीको अपनेमें अनुरक्त कर लिया। कामबाणोंसे व्याकुल हो वह उनकी ओर लालसा दृष्टिसे देखने लगी। कामके बशीभूत वह कुमारी कभी अपना मनोहर अंग कुमारको दिखाने लगी, कभी दर्पणके

+ श्री विमलपुराण १५३-१५७।

समान अपने कपोलोंको, तो कभी कभी मंद मंद मुसकानेसे मोतियोंके समान अपने दांतोंके दिखलानेकी चेष्टा करने लगी। अपने आपसी व्यवहारमें वे दोनों कुमार कुमारी कामबाणोंसे पीडित हो अपना अपना प्रेम व्यक्त करने लगे। सेठ इंद्रदत्तको भी कुमारमें कन्याके अनुरागका पता लग गया, उन्होंने बड़ी खुशीसे दोनोंका आपसमें विवाह करदिया। युवा कुमार श्रेणिक भी जिस प्रकार चन्द्रमा रोहिणीके साथ रमण करता है, रामचन्द्र सीताके साथ रमते थे और नागेन्द्र नागकुमारीके साथ रमणक्रियासे उपयुक्त रहता है उस प्रकार रमणी नंदश्रीके साथ रमणक्रीडा करने लगे।"

वस्तुतः यथार्थदृष्टि द्वारा देखनेसे यह सत्पक्ष प्रगट होता है कि विवाह सम्बन्धका विधान मुख्यतः वर कन्या पर ही अवलम्बित है। यह जोडा उन्हींके मध्य ठीकसर पूरा पट सकता है। सारी उमर जिन व्यक्तियोंको आपसमें रहना हो तो उनको ही अपने सहयोगीके स्वभाव, चर्या आदिका अनुभव प्राप्त करना आवश्यक है। इस बातको ही समझकर प्राचीनकालमें स्वयंवरकी रीतिको ही प्रधानता दी गई है। श्री आदिपुराणजीमें भगवन जिनसेनाचार्य साफ यही कहते हैं यथा:—

"सनातनोऽस्ति मार्गोऽयं श्रुतिस्मृतिषु भाषितः।
विवाहविधिभेदेषु वरिष्ठो हि स्वयंवरः॥"

स्वयंवर ही विवाह विधानोंमें सबसे श्रेष्ठ हो सकता है। यह विधि सनातन मार्ग है। यह कर्मभूमिमें सदासे प्रचलित रही है। इसमें कन्या अपनी इच्छानुसार वरको वरण करती है। उसमें किसी प्रकारका भेदभाव नहीं होता। कन्या जिसको पसंद करती है उसहीके साथ उसका विवाह होता है। ब्रह्म- जिनदास कृत हरिवंशपुराणके निम्न वाक्यसे यही प्रमाणित है:-

"कन्या वृणीते रुचितं स्वयंवरगता वरं।
कुलीनमकुलीनं वा क्रमो नास्ति स्वयंवरे॥"

भाव यह है कि स्वयंवरमें कन्या उस वरको वरती है जो उसको पसंद आता है।

इस शास्त्राज्ञाके समक्ष यह बात समझमें आ जाती है कि विवाहविधि कोई एक नियमित विधि नहीं है। वह लोक प्रवृत्तिके अनुसार समय२ पर बदलती रहती है।

जैन शास्त्रोंके पढ़नेसे हम जानते हैं कि पहिले सब वर्णों और उपजातियोंमें विना किसी भेदभावके विवाह होते थे। इन्हीं श्रेणिक महाराजने अपने पुरोहित सोमशर्माकी ब्राह्मण पुत्रीसे पाणिग्रहण किया था। वणिकपुत्र सेठ धन्यकुमारने क्षत्री कन्या महाराज श्रेणिककी पुत्रीसे विवाह किया था। ऐसे ही अनेक उदाहरण शास्त्रोंमें मिलते हैं। उपरान्त भगवान् चारों वर्णोंमें अनुलोम रूपसे-ब्राह्मणोंके लिये चारों, क्षत्रियोंके लिये तीन

और वैश्योंके लिये सिर्फ दो वर्णकी स्त्रियोंसे विवाह करनेका विधान किया है।

अर्थात् तीनों वर्णोंके लिये शूद्रा स्त्रीसे विवाह करना भी उचित ठहराया है, परन्तु प्रतिलोम विवाहकी—अपनेसे ऊपर वर्णकी स्त्रीसे विवाह करनेकी आज्ञा नहीं दी। जैन दायभाग ग्रन्थोंमें भी उपर्युक्त व्याख्याकी पुष्टि होती है। उसमें ब्राह्मण पिता और क्षत्री स्त्री, क्षत्री पिता और वैश्य स्त्री। एवं शूद्रा स्त्री और वैश्य पिता और शूद्रा स्त्रीसे उत्पन्न संतानका सवर्णी स्त्रीसे पैदा हुई संतानमें अलग हक नियत किये हैं। सारांश यह कि समयानुसार विवाहविधि बदलती रहती है। उसके लिये शास्त्रोंमें कोई एक नियम और क्षेत्र नहीं बतलाया गया है। आज वह समय आ गया है कि इन प्राचीन रिवाजोंको बिलकुल भुला दिया गया है, विवाहविधानका बिलकुल अनर्थ कर दिया गया है।

पहिले जमानेमें यह आवश्यक नियम था कि पहिले युवा अवस्थातक वर–कन्याको ब्रह्मचर्य अवस्थामें रक्खा जाय और उस समयमें उन्हें धर्म एवं लौकिक सर्व प्रकारकी उच्चकोटिकी शिक्षा दी जाय, जिससे उनकी मानसिक, शारीरिक एवं और सर्व प्रकारकी शक्तियां पूर्ण विकसित हो जाती थीं, फिर वह स्वयं अपने भले बुरेका विचार कर सकते थे।

नंदश्री इस ही प्रकार सर्वथा होशियार युवती थी। इसी

लिये उसने स्वयं श्रेणिककी परीक्षा करके उन्हें अपना भाविपति हृदयसे बना लिया और उसके पिताने भी इसमें कुछ आपत्ति नहीं की। आपत्ति करनेका कारण ही कुछ न था। विवाह संबध योग्य वर-कन्याके साथ होना चाहिये। सो दोनोंहीमें योग्य गुणोंका सद्भाव था। शास्त्रकारोंने कन्याके लिये यह गुण आवश्यक बतलाये हैं :—

" अन्यगोत्रभवां कन्यामनातङ्कां सुलक्षणाम्।
आयुष्मतीं गुणाढ्यां च पितृदत्तां वरेद्वरः॥ "

अर्थात् दूसरे गोत्रमें जन्मी हो, रागरहित हो, सुलक्षणवान हो, दीर्घायु हो तथा गुणवता हो (विद्याभ्याससे गृहधर्म और आत्मीक धर्ममें चतुर हो) तथा पिता द्वारा दी गई हो। तथापि वरमें निम्न गुणोंका होना लाजमी बतलाया गया है:—

" वरोपि गुणवान् श्रेष्ठो दीर्घायुर्व्याधिवर्जितः।
सुकुली तु सदाचारो गृह्यतेऽसौ सुरूपकः॥ "

अर्थात् वर गुणवान (धर्मकार्य तथा लौकिक आजीविकादि कार्योमें चतुर हो), कन्यासे बड़ा, दीर्घायु, निरोगी, सुकुली, सदाचारी तथा सुरूपवान हो। इस प्रकारके योग्य वर-कन्यामें विवाह संबंध ही एक वास्तविक दम्पति सुखका कारण हो सकता है।

दुःख है कि आजकल इन नियमोंकी ओर ध्याननहीं दिया

है। अयोग्य अपरिपक्क शरीर व मनवाले बालक-बालिकाओंके विवाह संबंध कर दिये जाते हैं, जिससे वे गार्हस्थिक सुख साधन करनेमें लाचार होते हैं। अधिकांशमें आजकल पतिपत्नीके स्वभाव ही नहीं मिलते। यदि वर विद्याप्रेमी उद्भट विद्वान है तो पत्नी निरी मूर्खा विद्याकी वैरिन है। पत्नी यदि सुशीला धर्मभीरु और सलज्ज है तो पति-महाशय बिलकुल आचार विचारको ढकोसला समझनेवाले उद्दण्ड हैं। बिचारी भोली पत्नीकी ओर आंख उठाकर भी नहीं देखते। तो तीसरे ऐसे दम्पत्ति-युगल हैं कि बिचारे पति और उसके सम्बन्धिजनोंका कर्कशा बहुके मारे नाके दम है।

सारांश यह कि अयोग्य अवस्थामें विवाह होनेसे आजकल गार्हस्थिक सुख कहने मात्रको रह गया है। बेचारे पति–पत्नि विवाहके उद्देश्यको ही नहीं समझते। वे नहीं जानते कि विवाह क्यों किया जाता है? वह ख्याल करते हैं कि वासनापूर्तिके लिए ही विवाह किया जाता है और उसको विनोदकी सामग्री जानकर वे उसके द्वारा वासनापूर्तिमें इस तरह निमग्न हो जाते हैं कि असमयमें ही शारीरिक बल और बुद्धिको खो बैठते हैं, उनके जीवन अल्प हो जाते हैं। उनके शारीरिक बलके ह्रासके कारण उनके योग्य और सन्तान भी नहीं होती। यदि होती है तो निकम्मी और अल्पायुषी होती है।

इस कारण सामाजिक जीवन बड़ा भयावह हो रहा है।

हजारों विधवायें और कुंवारे दिन प्रतिदिन बढ़ते दिखाई देते हैं। लोग विवाह नियमोंको उल्लंघन करके अयोग्य और छोटे२ उमरके बच्चोंका विवाह कर देते हैं, जिसके कारण आज गृहस्थ धर्मका यथोचित पालन होना दुष्कर हो रहा है। लोग नहीं जान रहे हैं कि विवाहका उद्देश्य कामवासनाको परिमित रखकर इंद्रियोंपर विजय प्राप्त करना तथा "धर्म" और "अर्थ" पुरुषार्थका योग्य रीतिसे संपादन करते हुये योग्य संतान उत्पन्न करना है जिससे आर्ष धर्म मार्ग प्रचलित रहे और समाज संगठितरूपसे सनुष्य फल प्राप्त कर सके।

वस्तुतः विवाहके उद्देश्योंको सिद्ध करनेके लिए और गृहस्थाश्रमका भार समुचित रीतिसे उठानेके लिये इस बातकी बड़ी भारी जरूरत है कि, "स्त्री और पुरुष दोनों योग्य हों, समर्थ हों, व्युत्पन्न हों, युवावस्थाको प्राप्त हों और विवाहके उद्देश्योंको भलेप्रकार समझते हों, बाल्यावस्थामें ही उनके शरीरका संगठन अच्छी रीतिपर हुआ हो, वे खोटे संस्कारोंसे दूर रक्खे गये हों और उनकी शिक्षा-दीक्षाका योग्य प्रबंध किया गया हो। साथ ही, विवाह संस्कार होने तक उन्होंने पूर्ण ब्रह्मचर्यका पालन किया हो और लौकिक तथा पारमार्थिक ग्रन्थोंका अध्ययन करके उनमें दक्षता प्राप्त की हो—अच्छी लियाकत हासिल की हो।" विना इन सब बातोंकी पूर्ति हुये विवाहके उद्देश्योंका पूर्णतासे पालन नहीं हो सकता, न गृहस्थाश्रमका भार समुचित रीतिसे

उठाया जा सकता है, और न वह गृहस्थाश्रम ही सुखाश्रम बन सकता है।

इसीलिये गृहस्थाश्रमसे पहिले आचार्योंने एक दूसरे आश्रमका विधान किया है जिसका नाम है "ब्रह्मचारी आश्रम"— अर्थात् ब्रह्मचारी रहकर विद्याभ्यास करते हुए शारीरिक और मानसिक शक्तियोंको केंद्रित करना। इस आश्रमका खास उद्देश्य इन्हीं सब बातोंकी पूर्ति करना है जो विवाहके उद्देश्योंकी पूर्ति तथा गृहस्थाश्रमके पालनके लिये जरूरी हैं। भगवज्जिनसेनाचार्यने आदिपुराणमें, इन सब आश्रमोंका क्रम इस प्रकारसे वर्णन किया है —

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः।
इत्याश्रमास्तु जैनानामुत्तरोत्तरशुद्धितः ॥ ३९-१५२ ॥

अर्थात्—ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और भिक्षुक ये जैनियोंके चार आश्रम उत्तरोत्तर शुद्धिको लिये हुये हैं।

इससे प्रकट है कि सब आश्रमोंसे पहला आश्रम "ब्रह्मचारी आश्रम" है। यह आश्रम वास्तवमें सब आश्रमोंकी नींव जमानेवाला है। जबतक आश्रमके द्वारा एक खास अवस्थातक पूर्ण ब्रह्मचर्यका पालन करते हुये किसी गुरुके पास विद्याभ्यास नहीं किया जाता है, तबतक किसी भी आश्रमका ठीक तौरसे पालन नहीं हो सकता, इसके बिना वे सब आश्रम बिना नींवके

मकानके समान अस्थिर और हानि पहुँचानेवाले होते हैं, इसलिए "सबसे पहिले बालक, बालिकाओंको एक योग्य अवस्थातक पूर्ण ब्रह्मचर्यके साथ रखकर उनकी शिक्षा और शरीर संगठनका पूर्ण प्रबन्ध करना चाहिये।" और इसके बाद कहीं उनके विवाहका नाम लिया जाना चाहिये। यही मातापिताका मुख्य कर्त्तव्य है।*

प्राचीन कालमें इन नियमोंका पालन यथोचित रीतिसे किया जाता था। हमारे पूर्वज इनका महत्त्व और जरूरत समझते थे। कुमारी नंदश्री ही क्या सब ही बालक-बालिकाओंका विवाह युवावस्थाको प्राप्त होनेपर और चारित्र दृढ़ एवं ज्ञानपटु होनेपर होते थे। इससे चतुर यौवनवती कन्या अपने बुद्धिबलसे स्वयं अपने जीवन–साथीको इच्छानुसार तलाश कर लेती थी।

यथार्थमें विवाह संबंधमें मुख्य संयोग कन्या और वरका होता है। उनमें परस्पर एक दूसरेपर न्योछावर हो जानेवाला प्रेमभाव होना चाहिये। इस बातका प्रबन्ध मातापिताओंको करना आवश्यक है। योग्य वर-कन्याको ढूंढकर उनका सामान्य परिचय एक दूसरेको अवश्य करा देना चाहिये जिससे वह एक दूसरेके स्वभावादिसे वाकिफ हो जावें और उस संबंधके प्रति अपनी प्रसन्नता व अपनी अप्रसन्नता प्रकट कर सकें, परन्तु

* विवाहसमुद्देश पृष्ठ ३४-३६।

यह तब ही हो सकता है जब प्रौढ़ अवस्थामें विवाह किये जांय। विवाहके समय कन्याकी उमर १६ सोलावर्षकी और वरकी २० वर्षकी अवश्य होनी चाहिये। दुःख है कि आजकल इससे ठीक उल्टी गंगा बह रही है और बाल एवं वृद्धविवाहके रिवाजोंद्वारा वर-कन्याके जीवन नष्ट किये जाते है।

इस दशाको सुधारनेके लिये स्वयं माताओं और कन्याओंको ध्यान देना आवश्यक है। यह पुरातन मार्ग है। इसमें लज्जा करनेकी कोई बात नहीं।

धर्म और अर्थ पुरुषार्थके समुचित रीतिसे साधन करनेके लिये एवं समाजमें दृढ़ और नियमित संगठन रखनेके लिये महिला समाजको भी इस ओर ध्यान देना चाहिये। बहुधा नन्हीं उमरमें विवाह करनेके लिये तो हमारी मातायें ही आग्रह करती हैं और धनके लालचमें पिशाच पिता पुत्रीको मरणासन्न बुड्ढेके हवाले करनेमें नहीं हिचकते। बाल और वृद्धविवाहोंका अंत महिलाओंके उत्साहसे प्रयत्न करनेमें सहजमें हो सकता है। प्रौढ़ अवस्थामें यदि कन्याओंके विवाह हों तो वे कभी भी अयोग्य वरके साथ विवाह न करें। वे कर्तव्य अकर्तव्यको विचारकर ऐसे विवाह संबंधमें साफ मुंह मोड़ जांय और यदि उनपर अनुचित दबाव डाला जाय तो वे उस शिक्षित वीर कन्याकी भांति अपनी रक्षा करलें जिसने प्रतिष्ठित पुरुषों और मजिष्ट्रेटको लिखकर अपनी रक्षा की थी।

परन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि कन्यायें सर्वथा उद्दण्ड और स्वछंद हो जांय। अपने गुण शील, लज्जा, विनय और विनम्रताको उठाकर ताकमें रख दें। यह उपाय तो लाचारीके लिये है। वैसे माता पिता जिस वरको उनके लिये तजवीज करें उसके ही आश्रित होना ठीक है।

माता-पिता अपनी संतानके हितू होते हैं इसलिये वह अपनी संतानका सम्बन्ध सर्वथा योग्य ढूंढ़ेंगे। इस अवस्थामें वर-कन्याका कर्तव्य यह होना चाहिये कि वह मर्यादा सहित एक दूसरेके स्वभाव आदिका सामान्य परिचय प्राप्त करलें, जिससे वह समझ लें कि हम आगामी परस्परमें प्रेमपूर्वक रह सकेंगे। यदि इस सामान्य परिचयमे वह एक दूसरेके स्वभावादिको अपने प्रतिकूल पावें तो बेशक अपनी अप्रसन्नता पितृजनपर प्रगट कर देना चाहिये। इसमें समाजकी भलाई है और लोकमें सुखशांतिके बढ़वारीका कारण है। नंदश्रीके उदाहरणसे पाठक उसके महत्वको अनुभव कर सकते हैं।

प्रौढ़ अवस्थामें विवाह संबंध होनेसे शीघ्र ही दंपतिकी गोद भरी-पूरी हो जाती है। उनके हर्षका कारण संतान उत्पन्न हो जाता है। संतान होनेपर यदि दैवी प्रकोपसे कोई दुर्घटना घटित हो जावे तो विवाहके उद्देश्यकी सिद्धि हो ही जाती है अर्थात् उस वंशका अंत नहीं होता। इस ही प्रकार जब नंदश्री और श्रेणिकका बिवाह हो गया और वे आनंदसे परस्पर प्रेम-पूर्वक दिन व्यतीत करने लगे तो अल्पकालमें ही नंदश्रीने गर्भ

धारण किया। उस समय उसकी देखभाल और इच्छापूर्ति करनेका विशेष खयाल रक्खा जाता था। पूरे नव मासके पूर्ण होनेपर कुमारी नन्दश्रीके एक सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ। दम्पतिने उसकी निर्भीकताको देखकर उसका नाम अभयकुमार रक्खा। क्रमसे यह युवा हो गया एवं अनेक विद्याओंका भंडार बन गया। 'चतुर अंगके धारक कुमार श्रेणिक रमणी नंदश्रीके साथ सानंद क्रीडा करने लगे एवं रति क्रीडारूपी कमलमें इतने आसक्त हो गये कि जाता हुआ काल भी उन्हें नहीं जान पड़ने लगा।'

इधर कुमार श्रेणिक आनन्दसे सेठ इन्द्रदत्तके यहां रहने लगे। उधर उनके पिता महाराज उपश्रेणिकने अपनी आयु अल्प जानकर उस चलाती पुत्रको राज्य दे दिया। आयुके अन्तमें उपश्रेणिककी मृत्यु हो गई। चलाती पुत्र स्वच्छन्दतापूर्वक राज्य करने लगा। आचार्य कहते हैं—

मृते राज्ञि स्वयं राजा भूत्वा पालयति प्रजाः।
इंद्राणी प्रमुखा राज्ञ्यो दुःख तिष्ठंति चौरवत् ॥ १८८ ॥
दुष्टान् संस्थापयामास शिष्टान्नाजयतिस्म सः।
तदा संचित्य मंत्रीशो गूढपत्रं लीलिखत् ॥ १८९ ॥
दत्वा दूतकरे पत्रं प्राहिणोत् श्रेणिकं प्रति।
गत्वा दत्तं शुभं पत्रं वाचयित्वा शमाप सः ॥ १९० ॥
आज्ञां श्री इंद्रदत्तस्य नीत्वा मुक्त्वा प्रियां सुतं।
गूढैः पंचसहस्रैश्च सुभटैः सहितो ययौ ॥ १९१ ॥

ससैन्यं श्रेणिकं मत्वा नीत्वा द्रव्यव्रजं भयात्।
निःसृत्य नगरात्सोऽपि पल्लीमाश्रितवांस्तदा ॥ १९२ ॥
राजारूढो महाराजा वृषस्कंधः प्रतापवान्।
छत्रचामरसंयुक्तो निर्वेज निजपत्तनं ॥ १९३ ॥
शुभयोगेऽधितस्थौ यो विष्टरं राजलक्षणः।
साधयित्वा खिलान् देशान् सुख राज्यं भुनक्ति सः ॥१९४॥

भाव यह है कि "आयुके अन्तमें महाराज उपश्रेणिकका मरण हो गया। वह राजा होकर प्रजाका पालन करने लगा। उसके राज्यकालमें इन्द्राणी आदिक जो रानियां थीं वे चोरोंके समान बडे दुःखसे रहने लगीं। राजा चलातो तनिक भी उनके दुःख सुखपर ध्यान नहीं देता था। वह दुष्ट राजा अपने राज्यमें दुष्टोंकी बढ़वारी करता था और शिष्ट-भले आदमियोंका विनाश करता था।

समस्त प्रजा उसके शासनसे दुःखित थी। मंत्री मति-सागरको बड़ी चिंता हुई। अच्छी तरह विचारकर उसने कुमार श्रेणिकको एक गूढ पत्र लिखा एवं दूतके हाथमें देकर उसे कुमार श्रेणिकके पास भेज दिया। जहांपर कुमार श्रेणिक रहते थे दूत सीधा वहां पहुंचा। कुमारके हाथमें पत्र दे दिया, जिसे पढ़कर कुमारके चित्तको बडो भारी शांति मिलो। उन्होंने शीघ्र ही अपने श्वसुर इन्द्रदत्तसे राजगृह नगर जानेकी आज्ञा मांगी। प्रियतमा नन्दश्री और पुत्र अभयकुमारको वहीं छोड़ा

एवं पांच हजार गूढ़ वेषधारी सुभटोंके साथ शीघ्र ही राजगृह नगरकी ओर प्रस्थान कर दिया।

राजा चलातीने जिस समय कुमार श्रेणिकको सैन्यसे मंडित आया सुना तो साथमें बहुतसा द्रव्य लेकर वह शीघ्र ही नगरसे बाहिर निकल गया एवं अपने नानाके पास जाकर भीलोंकी पल्लीमें रहने लगा। कुमार श्रेणिक उसी समय राजगृह नगरके महाराज बन गये एवं बैलके समान पुष्ट स्कन्धोंके धारक महाप्रतापी एवं छत्र और चमरोंसे शोभायमान वे महाराज श्रेणिक विशाल हाथीपर सवार हो अपनी राजधानी राजगृहमें प्रविष्ट हो गये। राजलक्षणोंसे मंडित महाराज श्रेणिकने राजसिंहासन अलंकृत किया एवं समस्त देशोंको जीतकर वे सुखपूर्वक राज्य करने लगे।"

उधर सेठ इन्द्रदत्तने जब श्रेणिकके राजा बन जानेकी खबर पाई तो विशेष रूपसे मिलनेके लिए नन्दश्री और अभयकुमारको साथ ले राजगृहको रवाना हुआ। मार्गमें यह लोग नन्दिग्राममें ठहरे हुये थे कि राजदूतने आकर वहांके विप्रोंसे राजाज्ञा अनुसार असाधारण कार्य करनेके लिए कहा। बात यह थी कि जिस समय श्रेणिक राजगृहसे निकलकर नंदिग्राम आया था तो इन विप्रोंने उन्हें आश्रय नहीं दिया था। इस ही लिए अब राजा होकर वह इनको दंडित करना चाहता था; जिसके हेतु उन्हें असाधारण कार्योंकी पूर्ति करनेकी आज्ञा दी थी।

विप्रगण हैरान थे। ऐसे समयमें अभयकुमारने इनकी सहायता की थी। इन्हींके बुद्धिकौशलसे वे राजाज्ञाओंकी पूर्ति करसके थे। इन असाधारण कार्योंकी पूर्तिसे श्रेणिकको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने विप्रोंको क्षमा किया और उस महानुभावके दर्शन किये जिसकी सहायतासे इन कार्योंकी पूर्ति हुई थी और अपने पुत्र अभयकुमारको पाकर वे बड़े हर्षित हुये। उसकी बुद्धि, कुशाग्रता और तीक्ष्णतापर उन्हें बड़ा गर्व हुआ। उन्होंने नन्दश्रीको अपनी पटरानी बनाया और अभयकुमारको युवराजपद प्रदान किया।

अभयकुमार ही विशेषकर राज्यका प्रबन्ध करते थे; जैसे कि प्रारंभमें दिये हुये उद्धरणसे प्रगट है। वे ही राज्यकी उलझी गुत्थियोंको सुलझाते थे। उचित रीतिसे न्यायकी पूर्ति करते थे। सम्राट् श्रेणिक योग्य युवराजके आथ सानन्द राज्य कर रहे थे। अपने बाहुबलसे उन्होंने अपने राज्यकी वृद्धि की थी एवं एक नवीन किला भी राजगृहमें बनवाया था। इस प्रकार बौद्धगुरुओंके उपदेशमें विश्वास रखते हुये और उनकी सेवा सुश्रूषा करते हुए वे आनन्दसे कालयापन कर रहे थे।

कुमारी चेलनीका विवाह

"एकदा चेटकः सोपि केनचित्कारणेन च।
स्वसैन्येन समागत्य राजा राजगृहं पुरम्॥"

—आराधना कथाकोष।

स्वभावसे ही मनुष्यकी प्रकृति स्वाधीनताप्रिय है। उसे अपना उत्कर्ष वांछनीय है, वह सदा पराश्रित रहना नहीं चाहता, परन्तु संसारकी कुवासनाओंमें फंसा हुआ प्राणी सहसा यथार्थताको देखनेमें असमर्थ होता है-वह इस बातको बहुधा भूल जाता है कि जिस तरह मुझे मेरे प्राण, मेरे बन्धु-जन और धनसंपदा प्रिय हैं उसी तरह दूसरोंको भी वे प्रिय हैं। बस इस अज्ञानतामें वह अपने पडोसियोंको प्रत्येक प्रकारका कष्ट पहुँचाते नहीं हिचकता है। समानभावसे अपने और परके लाभमें वह कर्तव्यपरायण नहीं होता है। भ्रमपूर्ण दृष्टिके वशीभूत हो वह प्रपंच रचता है, लड़ाई झगड़े करता है और दूसरोंके प्राणोंको भी हरण करता है। यह सब दुष्कृत्य उसे भविष्यमें दुःखोंके कारण होंगे, इस पर वह ध्यान नहीं देता है। पूर्व प्रकरणमें हम बतला चुके हैं कि सम्राट् श्रेणिकने अपने राज्यको बढ़ानेके प्रयत्न किये थे। इन प्रयत्नोंमें उन्हें पडोसी राज्योंसे लडना भी पड़ा था। वैशालीपर भी शायद

उनके रणवीर मुंहबाए बैठे थे। यही कारण था कि राजा चेटकको राजगृहपर ससैन्य आक्रमण करना पडा था। प्रकरणके प्रारम्भमें दिये हुये श्लोकसे यही प्रमाणित होता है और उत्तर-पुराणमें भी यही कहा गया है।

राजा चेटकने सेना सहित राजगृहकी ओर प्रस्थान किया। वह वहां पहुँचकर बाहिर उद्यानमें ड़ेरा डालकर ठहर गये। मध्यकालके यवनराजाओंकी भांति उनका रनवास उनके साथ शायद् नहीं था; परन्तु राजा चेटकका निजी चैत्यालय उनके साथ अवश्य था। वह सर्व प्रथम श्री जिनेन्द्र भगवानका पूजन किया करते थे। सच है मनीषी पुरुष आपत्तिकालमें भी धर्मपालनमें चलायमान नहीं होते हैं। वे हजार संकट पडने पर भी अपने प्रणपर डटे रहते हैं। राजा चेटक जिनपूजाके महत् फलसे पूर्ण परिचित थे। वह जानते थे कि श्री जिनेंद्र-देवकी पूजा सर्व फलोंको प्राप्त करानेवाला है। वस्तुत शांति और भक्तिसे मन, वचन, कायकी शुद्धि द्वारा भगवानकी पूजन मोक्षफल भी प्रदान करता है, परन्तु चाहिये हृदयमें शांति, आकुलताका अभाव और निस्पृहताका साम्राज्य! पूजा करते समय हृदयमें इतना प्रचुर वीतराग भाव होना चाहिये कि वीतराग–गुणकी भक्तिमें पूज्य और पूजकका द्वैतभाव ही नष्ट हो जाय! आवश्यकता नहीं है कि बहुतसी पूजन की जांय, बल्कि आवश्यकता है भावोंकी विशुद्धता निर्मलता और

राजा चेटक नित्य नियमसे पूजा करते थे। सेनास्थानमें भी वह इस कल्याणकारी नियमसे विमुख नहीं होते थे। मानो उनके इस पूजा फलका ही यह प्रभाव था कि हजारों मनुष्योंका रक्त बहते बहते बच गया। सम्राट् श्रेणिक और राजा चेटकमें परस्पर संधि हो गई। भारतका प्राचीन इतिहास भी इस घटनाका साक्षी है और इसहीके उपरांत सम्राट् श्रेणिकका विवाह कुमारी चेलनीसे हुआ था।

जिस समय सम्राट् श्रेणिक संधि निमित्त राजा चेटकके कटक-स्थानमें आए थे उस समय उनकी दृष्टि राजा चेटककी पुत्रियोंके मनोहर चित्रपटपर पड गई थी। वह उनकी अलौकिक सुन्दरता पर मुग्ध हो गये थे। उन्होंने पास खड़े हुए लोगोंसे पूछा—

"यह किनका चित्रपट है?"

उन लोगोंने उत्तर दिया—"राजराजेश्वर, ये जो विशालाके चेटक महाराज आए हैं, उनकी लड़कियोंका यह चित्रपट है। इनमें चार लड़कियोंका तो विवाह हो चुका है और चेलनी तथा ज्येष्ठा ये दो लड़कियां विवाह योग्य हैं। सातवीं चंदना अभी बालिका है।"

सम्राट् श्रेणिक इस समाचारको सुनकर हर्षित हुये और वे चेलिनी एवं ज्येष्ठापर मोहित हो गये, परंतु इसके विरुद्ध

देवदर्शन करना, सूर्यके रहते हुये ही भोजन करना, पानी छानकर पीना आदि साधारण कार्य करनेसे वे रोकी जाती हैं।

ऐसी अवस्थामें जिस दारुण दुःखका सामना उन्हें करना पड़ता है वह सहज अनुभवगम्य नहीं है, फिर भला ऐसी दशामें राजा चेटक अपनी सुकुमारी कन्याओंको किस प्रकार बौद्ध धर्मानुयायी सम्राट् श्रेणिकको समर्पण करनेको राजी हो जाते!

सम्राट् श्रेणिकको भी इस बातका विश्वास था अतः वह बड़े असमञ्जसमें पड़ गये। एक तरफ बौद्धधर्मकी भक्ति उनके हृदयमें थी तो दूसरी तरफ सुन्दरी कुमारियोंका प्रेम उनको रह रहकर मर्माहत कर रहा था। उन्हें अपना जीवन इस समय निःसार प्रतीत हो रहा था।

सम्राट् श्रेणिकको उदास देखकर उनके मंत्रियोंको विशेष फिकर हुई। वह यह जाननेके प्रयत्न करने लगे कि क्या कारण है जिससे महाराजको न अपने तन-मनकी सुध है और न राज्य प्रबंधकी ओर रुचि है। उन्हें किसी विषयमें भी चावसे सम्मिलित होते नहीं देखा जाता है, मानो उनका हृदय उनके शरीरसे बाहिर कहीं कोसों दूरीके विदेशमें उलझा पड़ा है? जाहिरा देखनेसे तो यही प्रतीत होता है कि किसी रमणी-रत्नकी मनमोहक रूप प्रभासे चुंधिया गये हों।

मंत्रियोंको यह विश्वास होते ही वह महाराजके मनोगत भावको जाननेके प्रयत्न करने लगे। यथार्थमें राजाका यदि

बड़ा ही सुन्दर चित्र बनवाया और उसे लेकर वह साहूकारके वेषमें अनेक सेठोंके साथ वैशाली पहुँचा। वहां सबसे पहिले रत्नमयी भेंट ले राजा चेटकसे मिला। राजा चेटकने भी कुमारका उचित सम्मान किया और मनोहर वचनोंमें बातचीत होने लगी। आचार्य कहते हैं कि राजा चेटकने कहा था—

स्थीयतामत्र पुर्यां भो भवद्भिः परमार्थिभिः।
अस्माकं वल्लभा जैना मित्राणि धनबांधवाः॥ २८०॥
अत्याग्रहं नृपस्यैव मत्वा मंदिरसन्निधौ।
गृहं संप्रार्थयामास तत्र संस्थितवांस्तदा॥ २८१॥

अर्थात्— आप महानुभाव मोक्ष प्राप्तिके अभिलाषी धर्मात्मा हैं। मेरी इस पुरीमें आप ठहरें क्योंकि जो महानुभाव जैनी हैं, जैन धर्म पालन करते हैं वे हमारे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं, मित्र हैं और धन एवं बांधव भी वे ही हैं। कुमार अभय अत्यन्त चतुर व्यक्ति थे। राजा चेटकका जब बहुत आग्रह देखा तो उन्होंने राजमहलके पास ही ठहरनेके लिये मकान लेनेकी प्रार्थना की। राजा चेटकने धर्मात्मा जान उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली एवं वे सानंद वहां ठहर गए।

आनन्दसे वह वहां व्यापारके मिस अपने उद्देश्य सिद्धिका अवसर देखने लगे। "बिल्लीके भाग्यसे छींका टूट ही पडता है।" एक रोजकी बात है कि कुमार अभय बडी भक्तिभावसे अपने साथियों सहित मधुर ध्वनि और उच्च स्वरसे जिनेन्द्र भगवानका

चारित्रको उज्ज्वल बनावें और घरोंके बाहर चहल कदमी कर अपने शरीरोंको भी पुष्ट बना सकें, जिससे समाजका स्वास्थ्य अधिक उत्तम हो ।

कुमारियोंको जब कुमार अभयका परिचय प्राप्त करनेके भाव उत्पन्न हुए तो वे उनसे पूछने लगीं—

"कामदेवके समान आकृतिके धारक महानुभाव ! आपका यहांपर आना किस देशसे हुआ ।

उत्तरमें कुमारने कहा—"हम लोग राजगृह नगरसे आए हुए हैं जहां पर कि महाराज श्रेणिक न्यायपूर्वक प्रजाका अच्छी तरह पालन करते हैं ।"

कन्याओंने फिर पूछा—"महाराज श्रेणिक कैसे राजा हैं ?"

कुमार अभयने उनके सामने महाराज श्रेणिकका चित्रपट फैला दिया एवं स्पष्ट रूपसे उनका स्वरूप दिखा दिया जिसे देख तीनों कन्यायें इस रूपसे निश्चल खड़ी रह गईं मानो कील दी हैं एवं वे इस प्रकार खेद करती बोलीं—"हे परम जिनधर्मी महानुभाव ! हमें इस प्रकारके उत्तम वरकी प्राप्ति कहां हो सकती है ?" बुद्धिमान कुमार अभय उनके मनका भाव पहिचान गये एवं "मैं महाराजा श्रेणिकसे मिला सकता हूं" ऐसा वायदा कर पहिले हीसे अपने मकानसे राजमहल तक जो सुरंग खुदवा रक्खी थी उससे आनेका इशारा कर दिया ।

दुष्टोंके फुसलानेसे कामके वशीभूत होना महा दुःखदाई है। क्षणिक इंद्रिय सुखकी तृप्तिके लिये अपने अमूल्य शील-रत्नको गंवाना कभी भी सुखवर्धक नहीं हो सकता। परपुरुषोंसे काम पड़ने पर मर्यादा सहित बातचीत करनेमें कोई हानि नहीं। परन्तु दूसरोंकी रूप-राशिके वशीभूत हो उनके इशारेपर नाचना बहिनोंके लिए कभी भी हितकारक नहीं हो सकता! बहुतसी असमयमें हठतः बनाई हुई हमारी विधवा बहिनें जल्दी ही ऐसे नरपिशाचोंके फुसलानेमें आ जाती हैं और फिर पतित हो न घरकी रहती हैं न घाटकी! उन्हें इन लोगोंसे सावधान रहना चाहिए।

हम मानते हैं कि उनपर अत्याचार किया गया है—उन्हें असमयमें ही विधवा बना दिया गया है। उन्हें प्रकृतिके नियम विरुद्ध कार्य करनेके लिए जबरदस्ती मजबूर किया गया है, परन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि बहिनें अनर्थ करनेपर उतारू हो जांय। उनको इस अवस्थापर अपना अहो-भाग्य समझना चाहिए कि वह अपना आत्मकल्याण करनेके लिए, वास्तविक मनुष्य जन्म फल प्राप्त करनेके लिए, गृह-स्थीकी झंझटोंसे बच गई हैं।

इस अवस्थामें शोक और मानसिक अथवा अन्यथा व्यभिचारमें उन्हें अपने जीवन नष्ट करना कदापि शोभनीक नहीं है। उनके लिए हितकर उपाय यही है कि गृहस्थ-परि-

हृदयसे स्वीकार कर लिया था। इसमें कुछ हर्ज नहीं था। उन्हें अपने इस भावको अपने पितृगण पर प्रगट कर देना आवश्यक था। उस दशामें वह ठगी नहीं जा सकती थीं, परन्तु कामके आवेशमें ऋषिगण भी चलायमान हो जाते हैं। फिर भला नवयुवती कुमारी चेलनाका सत्पथसे विचलित होना कुछ आश्चर्यपूर्ण कृत्य नहीं हो सकता। यद्यपि आदर्श मार्ग तो यही है कि अपनी काम-बुद्धि पर भी विजय प्राप्तकी जाय। अपने चंचल मनको चलायमन होते समय विवेक कोड़ेकी मारसे शान्त कर लिया जाय, यही श्रेष्ठ मार्ग है।

फलतः अभयकुमार कुमारी चेलनीको लेकर राजगृह पहुंचे। महाराज श्रेणिक अनेक सामंतोंको लेकर नगरके बाहर उन्हें लिवाने आए। सहर्ष आदर सहित लिवा ले जाकर उन्हें राजमंदिरमें ठहराया और योग्य तिथि और शुभ नक्षत्रमें कुमारी चेलनीका महाराज श्रेणिकके साथ विवाह हो गया। नवदम्पति आनन्दसे रहने लगे। युवाकालके प्रारंभिक प्रेमालापमें दम्पति एकटक विषयभोगमें लीन हो गए। उनका दम्पतिप्रेम रतिको भी डाह उपजानेवाला था। आजकल अधिकांशकी भांति उनका प्रेम छिछला और दिखावटी नहीं था। दोनों ही दम्पति स्वाभावतः एक दूसरेके प्रति आकर्षित हुए थे। उनमें दिखावटका भला क्या काम?

ऐसे ही दिन व्यतीत हो रहे थे कि एक दिन गृहस्थोंके

सरीखा पवित्र जल भर दिया जाता है--कौन पदार्थ कैसा है-तनिक भी विचार नहीं किया जाता, उसी प्रकार कुत्तेके चामके समान आपके घरमें मैं गंगाजल सरीखी आगई हूँ तथा जिस-प्रकार राहुके विद्यमान रहते भी उसकी स्त्री रोहिणी विधवा ही मानी जाती है अर्थात् परमतमें राहुको केवल शिर स्वरूप ही माना है इसलिए रोहिणीके लिए उसका रहना न रहना एकसा है; उसी प्रकार विना धर्मके मेरा महाराणीपद भी व्यर्थ है, इसलिए मेरा यहां रहना अयुक्त है। अतः राजगृहमें आना मेरा बडा दुःखदाई हुआ।

महाराणी चेलनीके ऐसे वचन सुन उत्तरमें महाराजने कहा-" हिरणीके समान नेत्रवाली महाराणी! जिस तरह तुम जैन धर्मको ही धर्म समझ रही हो, उस प्रकार मेरा भी दृढ सिद्धांत है कि संसारमें बौद्धधर्म ही महाधर्म है, उससे बढकर कोई धर्म नहीं, क्योंकि राज्यसुख धन जितने भी उत्तम पदार्थ हैं इस बौद्धधर्मकी ही कृपासे प्राप्त होते हैं।"

महाराणी चेलिनीको जैन धर्मका पूर्ण श्रद्धान था। महाराजकी बात उसे सहन न हो सकी, इसलिए उसने शीघ्र उत्तर दिया-" राजन्! भगवान जिनेन्द्र स्याद्वाद अनेकांतवादके स्वामी हैं, रागद्वेषसे रहित हैं, ध्यानमें लीन हैं, केवलज्ञानसे युक्त होनेसे सर्वज्ञ हैं, स्वयं तरनेवाले और दूसरोंको तारनेवाले हैं।

दूसरेकी रूचि अनुसार व्यवहार करना चाहिए। हठ करनेमें अप्रेम उत्पन्न होता है, जिससे कष्ट और कलहके कटु फल चखने पड़ते हैं। जो पत्नी विशेष हठ करती है उसको सब ही दूरदूर कहते हैं, कर्कशा आदि अनेकों भण्ड नाम रखते हैं, इसलिए महिलाओंको ऐसा व्यवहार करना चाहिये जिससे परस्पर प्रेममें बाधा न पड़े।

फिर भी आजकल अधिकांश बहिनें आवश्यक विद्यासे अनभिज्ञ मूढ़ हैं उनकी उपेक्षा करके हम अपने भाइयोंसे ही कहेंगे कि आप तो अपने 'सुकुमार अर्धअङ्ग'से विशेष विद्यापटु और बुद्धिमान् होनेका अभिमान रखते हैं तो क्या आपके लिए यह शोभनीय हैकि आप भी हठको ग्रहण कर पत्नीको हर-तरहके त्रास दें उसे सबके समक्ष अपमानित करें ? .

यदि स्त्रियां आपके मनोभावोंको समझनेमें असमर्थ हैं और आपकी रूचियोंके अनुसार वह सहसा वर्तन नहीं कर सकती हैं तो उसमें कसूर आपका है, क्योंकि आपने उन्हें सुचारू, शिक्षित और ज्ञानवती नहीं बनाया है, उल्टे उनपर तरह२ के अत्याचार किये हैं, क्षणिक इन्द्रियसुखके वशीभूत हो उन्हें अपने विनोदकी सामग्री समझली है। और उनके साथ उसी तरहका व्यवहार करते हो जिसतरह एक बालक अपने खिलौनेके साथ करता है। यह पुरूषोंके बड़प्पनको धूलमें मिलानेवाला व्यवहार है अतएव मनुष्यताके लिहाजसे

चेलनीकी धर्म-परीक्षा

" संकल्प्यं कल्पवृक्षस्य चिन्त्यं चिन्तामणेरपि ।
असंकल्प्यमसंचिन्त्यं फलं धर्मादवाप्यते ॥ "

—आत्मानुशासन ।

धर्मकी महिमा अपार है। वह अनुपम है। स्वयं वस्तुका स्वभाव ही है। अतएव हमारे परिणामों हीके आधीन धर्म है। हमारे उन परिणामोंसे जो स्वभावके अनुरूपमें होंगे अवश्य ही सुख प्राप्त होगा। जितना तारतम्य हमारे परिणामोंका निजस्वभावकी ओर उत्कृष्टतासे होगा उतना ही अधिक सुखानुभव हमको प्राप्त होगा। यही कारण है कि आचार्य कहते हैं कि "कल्पवृक्षसे फलकी प्राप्ति प्रार्थना (संकल्प) करनेसे होती है, और वह भी जितनी शब्द द्वारा कही जा सकती है उतनी ही होती है। चिन्तामणि रत्नके द्वारा भी जो फल प्राप्त होता है वह मानसिक चिंतवन करनेपर ही होता है और वह भी मनके विचार करनेसे अधिक नहीं।

परन्तु धर्मके द्वारा बिना याचना किए, बिना चिंतवन किए ही फल प्राप्त होता है और वह भी ऐसा कि जिसका प्रमाण वचनके तथा चिंतवनके अगोचर हो। अर्थात् वह इतना बड़ा फल होता है कि जिसे हम वचनसे कह नहीं सकते हैं और मनसे जिसका अन्दाज करना भी कठिन है।"

इस प्रकार सुख-सम्पत्ति ऐश्वर्य आदि जितने सांसारिक सुख हैं और स्वर्ग, मोक्ष आदि पारलौकिक सुख हैं वे सब इस धर्मके सेवनसे प्राप्त होते हैं। परन्तु यथार्थ धर्मका आश्रय लेना ही शुभ है। वस्तुस्वभाव ही धर्म है। उसहीका उपार्जन करना श्रेष्ट है।

सामान्यतः संसारमें अनेक मतमतांतर प्रचलित हो रहे हैं। और दिन प्रतिदिन एकसे अधिककी सृष्टि होती जाती है। तिसपर खूबी यह कि सब ही मतवाले अपने धर्मको यथार्थ धर्म कहनेका दावा रखते हैं। ऐसी अवस्थामें साधारण बुद्धि मनुष्य बड़े असमंजसमें पड़ जाता है। वह सत्यको देखनेमें लाचार हो जाता है और जिस तरह जो प्रपंचपटु पुरुष उसे श्रद्धान करा देता है उसीमें वह सत्बुद्धि ग्रहण कर लेता है—समझता है कि यही यथार्थ धर्म है, परन्तु इस प्रकार विना न्यायकी कसौटीपर कसे किसी भी धर्ममें श्रद्धान कर लेना हितकर नहीं है। हित तो इसहीमें है कि धर्मको अच्छी तरह मथन करके उसपर दृढ़ विश्वास जमा लेवे।

संसारमें जब एक टकेकी हंडिया हम खरीदते हैं तब उसे अच्छी तरह ठोक-पीट और बजा-रझाके लेते हैं, तब फिर भला उस धर्म—नौकाके विषयमें हमें उदासीन होना किस प्रकार उचित कहा जा सकता है जिस पर आरूढ़ होकर हमें संसार दुःख-सागरसे पार होना है। यदि आंख मींचकर हम

उसपर बैठ जावें और यह न देखें कि उसके पतवार ठीक हैं या नहीं अथवा उसकी पैंदी गलती तो नहीं, तो इसका परिणाम यही होगा कि अभाग्यवश उसकी पैंदीमें कहीं जरासा भी छिद्र निकल आया तो वह उसे ले डूबेगी। उस समय डूबतेको सहारा मिलना कठिन है।

इसलिए उत्तम तो यही है कि उस नौकापर बैठनेके पहिले ही उसकी अच्छी तरह परीक्षा कर लें जिससे मंझधारमें डूबनेकी नौबत न आये, परन्तु दुःख, संसारमें लोग इस परमावश्यक विषयकी ओरसे मुख मोड़े हुये हैं।

जिस धर्मके मनुष्योंमें वह भाग्यवशात् जन्म ग्रहण कर चुके हैं, उसीको यह सत्य मानकर रूढ़िवत् उसका पालन करते हैं। उस धर्मके वास्तविक मूल सिद्धांतोंके विषयमें भी वह अजानकार होते हैं। उनके निकट वह धर्म उसी रूपमें होता है जिस रूपमें उनके पूर्वज पहिलेसे जैसे तैसे उसे पालते आये हैं, परन्तु यह प्रवृत्ति हितकर नहीं है। इससे सदैव अनिष्टकी ही उत्पत्ति होती है।

धर्मके मूल सिद्धांतोंको न जाननेके कारण संसार-प्रपंचमें फंसे हुए मूढ़ मनुष्य धर्मके नामपर परस्पर लड़ते झगड़ते हैं, निरपराध जीवोंका खून बहाते हैं और सांसारिक कम-जोरियोंसे भरपूर देवी देवताओंकी मान्यता मानते हैं—उनके आगे माथा टिकाते हैं।

परन्तु इन सब अयथार्थ कार्योंका परिणाम ठीक उलटा होता है। लोग करते इन कामोंको अपने सुखके लिए, परन्तु इसके विपरीत उन्हें दुःखका सामना करना पड़ता है।

वास्तवमें सुख–दुःख अपने ही परिणामोंके आधीन हैं। बाहर कोई ऐसी शक्ति नहीं है जो उसको दे सके। अपने ही परिणामोंकी उज्वलतासे हम शुद्ध आचरणका पालन कर धर्मोपार्जन कर सकते हैं, जिसके फलस्वरूप हमारे जीवन सुखी बन सकते हैं। यही बात श्री आचार्य निम्न श्लोकमें प्रकट करते हैं—

"सर्वः प्रेप्सति सत्सुखाप्तिमचिरात् सा सर्वकर्मक्षयात्,
सद्वृत्तात्स च तच्च बोधनियतं सोप्यागमात् सश्रुतेः।
सा चाप्तात्स च सर्वदोषरहितो रागादयस्तेप्यत,
स्तं युक्त्या सुविचार्य सर्वसुखदं सन्तः श्रयन्तु श्रियै॥"

अर्थात्–सुखको सभी जीव चाहते हैं और जितना जल्दी मिल सके उतना ही जल्दी चाहते हैं, परन्तु उस सुखकी प्राप्ति तब हो सकती है जब सुखको नष्ट करनेवाला जो कोई दैव अर्थात् पूर्वोपार्जित कर्म है, उसका नाश हो जाय। उस अनिष्ट कर्मका नाश एक मात्र सच्चे चारित्रसे हो सकता है और वह चारित्र ज्ञान बिना नहीं हो सकता, क्योंकि बुरे भले चालचलनकी समझ, बिना ज्ञान कैसे हो? सच्चा ज्ञान भी यदि उत्पन्न करना हो तो वह आप्त वचनका आश्रय लिये बिना नहीं हो सकता और आगम तबतक कहांसे आ सकता है जबतक कि

मूलार्थ प्रकाशक द्वादशांग श्रुति जिनवाणीका प्रादुर्भाव न हो। श्रुतिका प्रादुर्भाव तब होगा जब कि कोई यथार्थ उपदेष्टा आप्त-सर्वज्ञ उसको कहे।

जीव कोई भी क्यों न हो, परन्तु तबतक आप्त नहीं हो सकता, जबतक कि वह रागद्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, इच्छा, वांछा आदि सर्व दोषोंको नष्ट न कर दे, क्योंकि जबतक रागद्वेषादिक दोष प्रगट बने हुये हैं, तबतक केवलज्ञानकी प्राप्ति होना तथा सत्य संभाषण होना दुःसाध्य ही नहीं किन्तु असंभव है। रागी, द्वेषी मनुष्य रागद्वेषके वशीभूत होनेसे सर्वथा सत्य भाषण कभी नहीं कर सकते और न वे निर्विकार निरपेक्ष कैवल्य विज्ञान ही प्राप्त कर सकते हैं। इसी प्रकार क्षुधादि दोषोंके होनेपर भी आप्तपना नहीं बन सकता है, क्योंकि क्षुधादिके वश हुआ मनुष्य भी अपने प्रयोजनार्थ चाहे जो कुछ सीधा उलटा संभाषण करता हुआ दीख पड़ता है। इसलिए ये सभी दोष आप्त सच्चे देव होनेके घातक हैं।

इस प्रकार अनुक्रमसे देखने पर प्रतीत होगा कि सर्वज्ञ आप्त भगवान ही सब सुखोंकी उत्पत्ति होनेमें निदान हैं। जब आप्तके बिना सुख प्राप्ति होना कठिन है तो सभीको यह चाहिये कि आप्तकी खोज और परीक्षा करें और परीक्षा हो जानेपर उस सच्चे आप्तका वचन स्वीकार करें।"

उपरोक्त प्रकार सच्चा आप्त–पूजनीय देव वही है जो राग–

द्वेषादि अंतरङ्ग एवं क्षुधादि बहिरंग सर्व दोषोंसे रहित सर्वज्ञ और सर्व-हितैषी है । इन्हींका पवित्र संस्तवन और आराधनसे निजस्वरूपका अनुभव होता है, जो धनसंचय करनेका मूल द्वार है । अतएव सच्चे देव और धर्ममें श्रद्धान करना ही हितकर है । विषयासक्त हो धर्मसे विमुख होना सर्वथा दुःखपूर्ण ही है ।

आचार्य कहते हैं—

" कृत्वा धर्मविघातं विषयसुखान्यनुभवन्ति ये मोहात् ।
आच्छिद्य तरुन्मूलात् फलानि गृह्णन्ति ते पापाः ॥ "

अर्थात्-' अज्ञान तथा तीव्र रागद्वेषके वश होकर जो धर्मकी रक्षा न करते हुये और नवीन धर्मका विघात करते हुये पूर्व संचित धर्मके फलोंको भोगते हैं वे पापी मानो उत्तम फलके देनेवाले वृक्षोंको जड़से काटकर उन वृक्षोंके फलको भोगनेवाले हैं । अर्थात् जैसे उत्तम फल देनेवाले वृक्षोंकी रक्षा करते हुये उनसे जो फल लेकर भोगते रहते हैं वे तो बुद्धिमान् सज्जन धर्मात्मा हैं, किंतु जो तीव्र उन्मादके वश अथवा तीव्र तृष्णाके वश होकर जड़से काटकर उन वृक्षोंके फल लेना चाहते हैं वे मूर्ख अविवेकी अधम पापी हैं ।' वस्तुतः धर्मकी कृपासे ही सांसारिक सुखोंकी प्राप्ति होती है । इस धर्मको भुलाकर सांसारिक सुखोंका भोग करना हितकर नहीं है ।

महाराणी चेलनी इस प्रकार धर्मके महत्वसे विज्ञ थीं । उन्हें सच्चे देव, सच्चे धर्म और सच्चे गुरुमें परम विश्वास था ।

वे जानतीं थीं कि सर्वज्ञ, सर्वहितैषी, क्षुधादि दोषों रहित वीतराग देव ही परम उपासनीय देव हैं। उन्हींका बताया हुआ स्याद्वादरूप अनेकान्तमई धर्म ही सच्चा धर्म है और उनके बताए हुए महाधर्मका आचरण करनेवाले निर्ग्रन्थमुनि ही सच्चे गुरु हैं।

आत्मसिद्धिके लिए इन्हीं महात्माओंके गुणोंमें अनुरक्त होना लाभकारक है, इन्हींकी भक्तिमें समयको लगाना उसका सच्चा उपयोग करना है। संसारमें सुखको बढानेवाली इन्हीं देव और गुरु और धर्मकी विनय है। संसारमें समभावका प्रचार इन्हींकी वाणी द्वारा हुआ और होगा इसलिए यही उपासनीय हैं। इतर देवी देवता, भूत-भैरव-भवानी, ब्रह्मा आदि कोई भी सच्चे देव नहीं हैं, परंतु दुःख है कि आज हमारी बहिनें धर्मका महत्व जरा भी नहीं समझी हुई हैं। वे जरा २ सी बातके लिए इतर देवी-देवताओंकी बोली बोलती हैं, मानता मानती हैं, उनसे उनके मिथ्यात्वका बंध होता है और आत्माका अकल्याण होता है। जिस बातकी पूर्तिके लिए यह लोग इन इतर रागी द्वेषी देवोंकी पूजा करती हैं और भेंट चढ़ाती हैं उसकी भी पूर्ति कभी होते देखी नहीं गई है। यदि कदाचित् किसी एककी वाञ्छापूर्ति शुभोदयसे कहीं इसी निमित्तके साथ हो गई तो वह उससे इन देवोंका कृपाफल क्या रहा? उस प्राणीके पुण्योदयसे उसरूप कार्य होना ही था।

भाग्यवशात् उसमें यदि देवी-देवताओंकी मानताका निमित्त मिल गया तो क्या हुआ? उससे इन रागी द्वेषी देवताओंकी असलियतमें कुछ फर्क थोड़े ही पड़ गया? फिर हमारी बहिनें तो जब कभी ऐसी मानताओंको मानतीं हैं, परन्तु जो भील चमार आदि जातियां प्रतिदिन उनकी मानता मानते हैं उनके भी दिन यह नहीं फेर सकते हैं, वे जीवनकी नीच अवस्थामें ही पड़े दिखाई देते हैं।

ऐसी दशामें हमारी बहिनोंको महाराणी चेलनीके दृढ़ धर्मश्रद्धानसे शिक्षा ग्रहण करना चाहिए। उन्होंने अपने विधर्मी ससुरालमें भी अपने ही धर्मका पालन करना श्रेष्ठ समझा था। सच्चे धर्मसाधनके समक्ष उन्होंने अपने प्राणोंसे प्यारे पतिदेवकी भी मनोवांच्छाको उचित शब्दोंद्वारा पलट दिया था और अपने सच्चे जिन धर्मका पालन करने लगी थीं।

महाराजने भी उन्हें इस बातकी आज्ञा दे दी थी, यह हम पहिले लिख चुके हैं। सच है, धर्मपरायण व्यक्ति कठिनसे कठिन समस्या उपस्थित होनेपर भी निज धर्मको नहीं छोड़ते हैं—वास्तविक धर्मको समझनेके लिए सदैव तत्पर रहते हैं—आंख मींचकर धर्मके नामपर ढोंग नहीं रचते हैं।

महाराणी चेलनीकी इस धर्मपरायणताकी खबर बौद्ध गुरुओंको लगी और उन्हें मालूम हुआ कि महाराज श्रेणिकने

उनको अपने धर्मका पालन करनेकी आज्ञा देदी है, तो वे बड़े विकल हुए। महारानी चेलनीका जैनधर्ममें दृढ़ आग्रह देखकर वे उसे समझानेके लिए उसके महलोंमें आए। और अपनी गुरुता प्रगट करते हुए यह कहने लगे—

प्रोवाच शृणु भो बाले! जैनाः कुगुरवो मताः।
न नग्नाः पशवोऽपि स्युर्वयं ज्ञानाब्धिपारगाः ॥२९९॥
तदा बभाण राज्ञी तं तावको धर्म ईदृशः।
चेद्भवेद्भोजयित्वाऽहं गृहीष्यामि न संशयः ॥ ३०० ॥

अर्थात्—अरे मूर्ख लड़की! "तू जैन गुरुओंकी प्रशंसा करती है यह तेरा अज्ञान है। जैनियोंके गुरु कुगुरु हैं, यदि उन्हें नग्न मानकर ही गुरु माना जाय तो नग्न तो पशु भी हैं। उन्हें भी गुरु मानना चाहिये। देख, हम लोग ज्ञानरूपी समुद्रकी पारपर पहुंचे हुये हैं, परमज्ञानी हैं, इसलिये हमको ही तुझे गुरु समझना चाहिये।"×

बौद्ध गुरुओंके यह वचन सुनकर बुद्धिमान महारानीने उनसे विशेष विवाद करना उचित नहीं समझा। उनको तो यही उत्तर दिया कि "यदि आपका धर्म इतना उत्तम है तो मैं आपलोगोंको भोजन कराकर आपका धर्म ग्रहण करूंगी। इस बातमें जरा भी संदेह नहीं।"

यह उत्तर पाकर बौद्धगुरु बड़े हर्षभावसे वहांसे प्रस्थान

× विमलपुराण पृ० ५६

कर गये । महाराणी चेलनीने उनकी परीक्षा करना ही उचित समझा । वह उनकी ममत्व बुद्धिपर दयार्द्रचित्त हो गई । वस्तुतः गाढ़ मिथ्यात्वके वशीभूत हुआ प्राणी यथार्थ धर्मको देखनेमें असमर्थ होता है । वह उस ही मिथ्या श्रद्धानको यथार्थ धर्म समझता है जिसमें उसने अपने पूर्व कर्मोंके शुभाशुभ फलस्वरूप जन्म ग्रहण किया हो । वह उस कर्मजनित प्रभावके अनुरूप अपने जन्मके धर्मको ही यथार्थ धर्म समझता है और उसका ममत्वभाव उसमें इतना गाढ़ होता है कि वह उनकी यथार्थताकी परीक्षा करनेमें लाचार होता है ।

संसारमें अधिकांश यही अभिनय दृष्टिगत होता है । ऐसे विरले ही व्यक्ति देखनेको मिलते हैं जो सत्यासत्यका निर्णय न्यायकी दृष्टिसे करके अपनी आत्मसंतुष्टि करते हों । सिर्फ लोकमूढ़ता ही आजकल धर्म हो रहा है । जिस बातको धर्मके नाम पर हमारे बापदादे करते आए हैं, वह हर हालतमें ठीक है । उसके विपरीत हम एक शब्द भी नहीं सुनना चाहते ।

न्यायकी कसौटी पर कसकर उसकी परीक्षा करना तो बडी बात है । यही वजह है कि आज विविध धर्मोंकी यथार्थता जाती रही है । धर्मके मूल भावको समझना कठिन हो रहा है । गाढ़ मिथ्यात्वका साम्राज्य छा रहा है । अन्धेरका जमाना फिर बात ही क्या है ? उस समय बौद्ध साधु भी ब्राह्मणधर्मके यज्ञ-हिंसा और संकीर्ण-हृदयता तथा जैनधर्मकी कठिन तपस्यासे

ऊब रहे थे। उन्होंने अपने लिए एक 'मध्य' का मार्ग ढूंढ निकाला था, जिसका अनुसरण कर वह मोक्ष पाना चाहते थे। उनका भी गाढ़ ममत्व इस 'मध्यमार्ग' के उत्कट प्रचारमें केन्द्रीभूत हो रहा था। वे यथार्थता और अयथार्थताको देखनेमें लाचार हो रहे थे।

महाराणी चेलनीके निमंत्रणके अनुसार दूसरे रोज बौद्ध साधुगण भोजनके लिए महलोंमें आए। उनका आतिथ्य उचित रीतिसे करनेके लिए राणीने उनको एक साफ स्थानमें भोजनके लिये बैठा दिया। जब वे भोजनके लिए बैठ गए तब उसने उनका एक२ जूता उठवा मंगवाया, क्योंकि पहिले रोज जो ये साधुगण अपने ज्ञानका बखाण कर गए थे, सो महाराणी चेलनीको तो उस ही बातकी परीक्षा लेनी थी। बस उन जूतोंको खूब पीसकर उसे छाछमें डाल मसाला मिला दिया और इस अद्भुत रायतेको थोड़ा२ सबको परोस दिया। वे बौद्ध साधु-लोग उसे कोई स्वादिष्ट पदार्थ जानकर खागए। किसीके भी ज्ञानने उस समय कुछ काम न दिया।

भोजनसे तृप्त होकर जब वे अपने 'आराम' (मठ) को चलने लगे तो वहां उनको अपना एक२ जूता ही दृष्टि नहीं पड़ा। वे बड़े हैरान और चकित हुए, इधरउधर खोजनेपर भी उन्हें जूतोंके दर्शन नहीं हुये। वे अपने ज्ञानसे भी उन्हें नहीं जान सके। बातकी बातमें बौद्ध गुरुओंके जूतोंकी चोरीका हुल्लड़ राज-

महलमें मच गया। महाराणी चेलनीके कानोंतक भी उसकी आवाज पहुंची।

उसने उस समय उन बौद्ध गुरुओंके पहिले दिनकी बातको लक्ष्य करके कहा "बौद्धगुरु तो सर्वज्ञ हैं। वे अपने दिव्यज्ञानसे समझें कि उनके जूते कहां है?" रानीके इन वचनोंको सुनकर बौद्ध गुरुओंका माथा ठनका। वे अवाक् रह गये। आखिरकार उन्हें यही कहना पड़ा कि "हमारा ज्ञान ऐसा नहीं जो यह बात जान सके।" इस समस्याके कारण उनको हिम्मत ही न पड़ी कि वे महाराणी चेलनीसे बौद्धधर्मके विषयमें कुछ कहते। उधर थोड़ी ही देरमें उस निःकृष्ट रायतेको खानेमें उन्हें कै (वमि) हो गई। कैमें उन्होंने जब जूतोंके टुकड़े निकले देखे तो वे सबके सब बड़े लज्जित हुए और चुपचाप अपने मठको चले गए।

राजमहलमें इस प्रकार बौद्ध गुरुओंका अपमान हुआ। इस बातका शोर चारों ओर मच गया। महाराज श्रेणिकने भी इस वार्ताको सुना। महाराणी चेलनीने उन्हींके गुरुओंकी अवज्ञा उन्हींके महलोंमें की यह बात उनको असह्य थी, वे क्रोधमें धधक उठे और उसहीके आवेशमें आकर वे राणीके पास आए और उलाहनोंके साथ उलटी सीधी सुनाकर कहने लगे :-

"शृणु राज्ञि! महाधर्मादन्यो धर्मो न विद्यते ॥"

अर्थात्-देखो रानी! बौद्धधर्म ही महाधर्म है, उससे भिन्न

अन्य कोई भी संसारके अन्दर उत्तम धर्म नहीं। तुम्हें उसकी इस रूपसे अवज्ञा नहीं करना चाहिये।" महाराजको कुपित देखकर राणीने कुछ विशेष न कहकर यही कहा कि मेरा भाव बौद्ध साधुओंकी अवज्ञा करनेका नहीं था। महाराज यदि बौद्धधर्मको ही सर्वश्रेष्ठ धर्म मानते हैं तो अच्छी बात है। 'क्षणिक धर्मके अनुयायी बौद्ध गुरु जिस समय ध्यानमें लीन होंगे उस समय मैं उनकी परीक्षाकर आपका धर्म धारण करूंगी, आप विश्वास रक्खें।'

पाठको! उस जमानेके मनुष्योंका चारित्र इतना पतित नहीं हुआ था कि वे आजकलके धर्मप्रचारकोंकी भांति सत्ता, भय, लोभ, छल, कपट आदिका सहारा ले अपने धर्मका प्रचार करते अथवा इन कारणोंके वश होकर कोई अपना धर्मत्याग कर अन्य धर्म ग्रहण कर लेता! उस समयके मनुष्य अच्छी तरह जानते थे कि धर्मका संबंध आत्मासे है। बाह्य आडम्बर अथवा सांसारिक कार्योंकी श्रेष्ठता किसी धर्मके उच्चतम होनेकी साक्षी नहीं है। इनके वशीभूत होकर ही धर्मका श्रद्धान रखना मिथ्या अभिमान है। उसमें धर्मका लेश नहीं है। धर्मकी पहुंच तो हृदयमें होना चाहिये। हृदय ही उसके मूल्यका पारखी है।

धार्मिक तत्वोंकी सरलता, मौलिकता और श्रेष्ठता उसमें इस तरह कूटर कर भर देना चाहिये जिससे स्वयं वह उस धर्मकी श्रेष्टताको स्वीकार करले। इसलिये इस समय जब कि किसी

भी धर्मवालेको बहुधाकर अपने धर्मके वास्तविक तत्वोंका पूरा पता नहीं है तब धर्म प्रचारका सबसे अच्छा तरीका यही है कि तुलनात्मक ढंगसे उस व्यक्तिको उस धर्मकी श्रेष्ठता समझा दे। इस ही ढंगसे वास्तविकरूपमें धर्म प्रचार हो सकता है; जिससे आपसी विद्वेष फैलनेकी भी संभावना नहीं है। तिसपर किसीके धर्मप्रचारको अपने धर्मपर आक्रमण करता खयाल करके उससे दुश्मनी करके लगना महज बेवकूफी है। सब ही अपने २ धर्मको अच्छा समझते हैं और उस अच्छाईको ही सर्व प्रगट करते हैं। इसमें किसीको आपत्ति होना अनावश्यक है।

बाजारमें हजारों दूकानें कपड़ेवालोंकी हैं। सब ही अपने२ कपडेको अच्छा बताते है और उसे ग्राहकके सामने रखकर उसकी अच्छाई बताते हैं। यह दिनरात बाजारोंमें दुनियांमें हरजगह होता रहता है। कोई भी दुकानदार अपने पड़ोसी दुकानदारकी इस कारगुजारीसे चिढता नही है और न उससे वैर बांधकर ही बैठ जाता है।

फिर इस ही प्रकार ज्ञान-गुदड़ीमें धर्मके ग्राहक भटक रहे हों और उन्हें प्रत्येक मतवाले अपने २ धर्मकी खूबियां सुझायें और वह किसी एक धर्मको स्वीकार करले तो दूसरे धर्मवालोंको उस धर्म-प्रचारकके दुश्मन क्यों बन जाना चाहिये। बस धर्मप्रचारका मार्ग सबके लिए खुला हुआ है। वहां सचाईसे काम लेना ही श्रेयस्कर है, ग्राहकगण अच्छी तरह

ठोकबजाकर उसकी देखमाल करके उसे ग्रहण करेंगे। महाराणी चेलनीने भी यही बात महाराज श्रेणिकसे कही थी।

सम्राट् श्रेणिकसे महाराणी चेलनीने बौद्धगुरुओंकी ध्यान अवस्थामें परीक्षा लेनेके लिये कह ही दिया था। सो "एक दिन जब कि समस्त बौद्ध साधु ध्यानमें लीन थे उस समय राणी चेलनी उनके मठमें गई। पासमें खड़े रहनेवाले किसी मनुष्यसे यह सुनकर कि 'यद्यपि इन साधुओंके शरीर यहां पड़े दीखते हैं परन्तु इनकी आत्मा ध्यानके योगसे इस समय सिद्धालयमें बिराजमान हैं।' उनकी असली परीक्षा करनेके लिए राणीने सखीके हाथसे मठमें आग लगवादी। ढोंग कबतक चल सकता है ? आगको देखते ही वे समस्त साधु मठ छोड़कर एकदम भाग गये।

र.णी चेलनीके इस कृत्यका पता महाराज श्रेणिकको लग गया। वे शीघ्र राणीके पास आये और इस प्रकार उससे कहने लगे—'राणी ! साधुओंके मठमें जो तूने आग लगाई है यह बड़ा ही निंदनीक और दुःखदाई कार्य किया है। ऐसा निंदनीक और दुःखदायी कार्य तुझे नहीं करना चाहिये। तू तो जैन धर्मको पालन करनेवाली और दया करनेमें पंडिता समझी जाती है, जरा बता तो सही, तूने मठको जलाकर जीवोंके विध्वंस करनेका कार्य कैसे कर डाला ?

महाराजके ये बचन सुन मुस्कराकर राणी चेलनीने

कहा—'नरनायक प्राणनाथ ! एक मनुष्यके कहे अनुसार मैंने यह समझा था कि ये समस्त साधुगण मोक्षमें चले गये हैं तथा यह निश्चित बात है कि जबतक शरीरोंके अन्दर लालसा रहती है तबतक संसारमें घूमना पड़ता है और संसारमें अनेक प्रकारके दुःख उठाने पड़ते हैं। उनका यह समस्त दुःख नष्ट हो जाय, इस आशासे मैंने उनके मठमें आग लगवा दी थी।'

इस बातकी पुष्टिमें राणीने एक कथा भी सुनाई कि कौशांबी नामकी नगरीमें एक सागरदत्त और दूसरा सुभद्रदत्त सेठ रहते थे। इनकी आपसमें यह वार्ता हो गई थी कि जिनके जो संतान होगी उसका वह परस्पर विवाह सम्बन्ध कर देंगे। सेठ सागरदत्तके कालानुसार एक पुत्र हुआ जिसका नाम सुमित्र रक्खा गया और सेठ सुभद्रके नागदत्ता नामक पुत्रीने जन्म लिया। योग्य समयमें अर्थात् युवा होनेपर दोनोंका विवाह हो गया। अभाग्यवश सुमित्रका रूप नाग जैसा था। सो नागदत्ताकी मां इस कारणवश बड़ा शोक करती थी। संतानकी वेदना मांको अधिक होती है, सो एक दिन नागदत्ताने इस शोकका कारण जान लिया। सो उसने अपनी मांको शांत किया, क्योंकि रात्रि समय उसका पति मनुष्यरूप हो जाता था। तब मांने उस सर्पशरीरको अपने पास भेजनेको कह दिया। एक रोज मौका पाकर नागदत्ताने ऐसा ही किया। उसकी मांने उस शरीरको जला दिया तबसे वह सेठपुत्र मनुष्यरूपमें ही

रहकर नागदत्ताके साथ आनन्द-केलि करने लगा। इस प्रकार यह कथा कहकर वह (चेलनी) बोली—"प्रिय महाराज! यही समझकर मैंने बौद्ध सन्यासियोंके मठमें आग लगवा दी थी, क्योंकि मुझे निश्चय हो गया था कि समस्त बौद्ध साधु तो सिद्ध होकर मोक्षमें जा बिराजे हैं, ये जो इनके कलेवर रह गये हैं वे व्यर्थ पड़े हैं। इनका जला देना ही अच्छा, अन्यथा फिर उन्हें आकर इन कलेवरोंको धारण करना पड़ेगा और दुःख सहना होगा।"

महाराणीके इस सारगर्भित उत्तरको पाकर महाराज श्रेणिक चुप हो गये। पत्युत्तर देनेमें वे असमर्थ ही थे, उन्होंने महाराणीसे और अधिक कुछ कहना व्यर्थ समझा, परन्तु इतने पर भी उनका श्रद्धान बौद्ध गुरुओंमेंसे हटा नहीं था। प्रत्युत इस प्रकार अपनी राणी द्वारा उनका अपमान सुनकर वे बड़े दुःखित हुये थे।

वह महाराणी चेलनीपर कुपित थे और जैन गुरुओंके प्रति उनके अति तीव्र कटुभाव थे। मौका पाकर वे चेलनीको बुरा-भला भी कहते रहते थे। जैन गुरुओंको निन्दा भी कर देते थे, परन्तु राणी अपनी श्रद्धानमें दृढ़ थी। वह ऐसा ही कुछ कह देती थी कि—

"आप चाहे कुछ कहें, परन्तु यथार्थता छिपायेसे छिप नहीं सकती। मैंने दो बार आपके गुरुओंकी परीक्षा ली और

दोनों ही बार वे परीक्षामें अनुत्तीर्ण हुए। फिर बौद्ध-गुरुके वचनोंमें स्वयं शाक्यपुत्र गौतमबुद्ध सर्वज्ञ और सर्वदर्शी नहीं हैं। वे हस्तामलकवत् जगतकी चराचर वस्तुओंको प्रत्यक्ष देखनेमें असमर्थ हैं।* उधर जैन गुरुओंकी प्रशंसा स्वयं जगत कर रहा है। भगवान् महावीर नातपुत्तकी सर्वज्ञता और सर्वदर्शिताका उल्लेख बौद्धधर्मके जन्मदाता शाक्यपुत्र गौतमबुद्धने बडे चावसे एकसे अधिक बार किया है।× ऐसी दशामें महाराज! बताइये मैं अपने श्रद्धानको पलटनेके लिए और किस उपायका अवलम्बन लूं? मुझे तो यथार्थता वहां दीख ही नहीं पड़ती।"

ऐसे शब्दोंको सुनकर महाराज श्रेणिकका हृदय और भी भभक उठा, परंतु महारानी चेलनीकी बुद्धिमत्तासे वे लाचार थे।

* देखो बौद्धग्रन्थ। × हिन्द-ग्रन्थमाला देखो म[illegible]मान ६५

(८)

सम्राट् श्रेणिक और यशोधर मुनि!

" हा ! तुम इतने तुच्छ न हित अनहित पहिचानो।
जिससे होता अहित उसीको हितकर मानो॥
करो पूर्ण उद्योग समय है जागो जागो।
तोड़ो अब अज्ञान द्वार मूरखता त्यागो॥"

सर्वसाधरणमें बहुधा सदैवसे यही भ्रान्ति चली आई प्रमाणित होती है कि निर्बलको सबल सतायें-निर्बलोंको संसारमें जीनेका कोई हक ही प्राप्त नहीं है, यह ऐसे लोगोंकी धारणा हो रही है, तिसपर खूबी यह कि वह अपने इस सिद्धान्तको प्राकृतिक प्रमाणित करते हैं। वह कहते हैं कि भौतिक संसारमें दृष्टि पसारिये, यही सिद्धान्त सर्वत्र काम करता नजर आयगा। छोटी२ रूखरी-घास आदिको उसहीको पड़ोसी कोई अन्य विषैली रूखरी नष्ट कर देती है। छोटे२ कीड़ोंको पक्षी अपना शिकार बनाते हैं, पक्षियोंको अन्य बडे पशु हड़पकर जाते हैं। और फिर मनुष्य सब पर ही हाथ साफ करनेका दम भरता है। जाहिरा देखनेमें यह एक नियमित सिद्धान्तसा प्रगट हो जाता है; परन्तु पाठकगण जरा गहन विचार कीजिए।

समस्त जीवित प्राणियोंमें मनुष्य सर्वश्रेष्ठ प्राणी प्रमाणित किया गया है। उसे प्रत्येक जाति और धर्ममें अशरफ-उल-

मखलूकात करार दिया है। वस्तुतः बात भी यूं ही है। मनुष्यमें बुद्धिबल, बाहुबल आदि ऐसी विशेषतायें हैं जो उसे इन पशु-पक्षियोंसे विशेष उन्नतिशील प्रमाणित करती हैं, अतएव जब मनुष्य अन्य साधारण जीवित प्राणियोंसे उत्कृष्ट है तो उसके लिए यह लाजमी नहीं है और न यह उसके लिये शोभनीक है कि वह इतर जीवित प्राणियोंका अनुकरण करे! कोई भी भला मानस उस व्यक्तिकी सराहना नहीं करेगा जो एक पतित-नीच अथवा चारित्र भ्रष्ट व्यक्तिका अनुकरण करने लगे।

मनुष्यमात्रके लिए तो श्रेष्ठ राजमार्ग वही बतलाया गया है जिसपर होकर संसारके महान पुरुष गुजरे हों। ऐसी दशामें यह सहज सिद्ध है कि मनुष्यके लिए यह स्वाभाविक नहीं है कि वह इतर प्राणियोंकी भांति अन्य अपनेसे निर्बल प्राणियोंको पीड़ा पहुंचाकर-उनके प्राणोंका अपहरण करें; परंतु दुःख है कि संसारके मनुष्य इंद्रिय सुखकी भ्रान्तिमें पड़े हुए इस यथार्थताको देखनेसे लाचार हैं। वे अपनी रसना इन्द्रियकी तृप्तिके लिए अथवा मनोविनोदके लिए दीन, हीन, निरपराध, मूक प्राणियोंके प्राण लेते नहीं हिचकते हैं। उसमें वे अपना स्वत्व समझते हैं और उसकी पूर्तिमें गर्व करते हैं। यह संसारकी विचित्र गति है।

अधिकांशमें ऐसे पुरुष यही कहते हैं कि 'जब यह प्रकृतिका नियम है कि बलवान निर्बलके आधारसे जीवित रहे तो फिर

हम क्यों हाथ बांधकर बैठें ? वेशक यह बात बिल्कुल ठीक है कि प्रत्येक जीवित प्राणीके भीतर एक प्राकृत इच्छा इस बातकी है कि वह अपने आपको कायम रक्खे परन्तु प्रश्न यह है कि "अपना आपा" किसका नाम है ?

इस प्रकार इस दूसरी दृष्टिसे उक्त विषयपर बिचार करनेसे प्रकट होता है कि साधारणतया संसारमें मनुष्यगण आत्मा और पुद्गलका मिश्ररूप जो शरीर बना हुआ है उसहीको अपना आपा खयाल करते हैं और यह उनका भ्रम है।

सच्चा जीवन शरीरको कायम रखनेमें नहीं है। जीवन तो आत्मरूप ही है, इसलिए उसकी प्राप्तिके लिए प्रयत्न करना ही सच्चा जीवन संग्राम हो सकता है। आत्म प्राप्तिमें हिंसादि दुष्कर्म बाधक हैं। वहां तो साम्यभावकी प्रचुरता होना लाजमी है। पराधीनताकी आकुलताका नष्ट होना अवश्यम्भावी है। तब ऐसी दशामें संसारके इतर प्राणियोंको कष्ट देना, उनके प्राणोंको अपहरण करना किसी तरह भी न्यायसंगत नहीं कहा जा सकता, परन्तु कर्मोंका प्राबल्य अजब है।

संसारमें विवेकको स्थान बहुतकम प्राप्त है। सब ही सांसारिक वासनाओंकी पूर्तिमें हेयाहेय और उपादेयको विचारनेमें असमर्थ हैं। कोई जह्विके स्वादके लिये तो कोई मनोविनोदके लिए ही निर्बल जीवोंका घात करते हैं। रणप्रिय जातियोंमें इस विषयकी मात्रा कुछ अधिक पाई जाती है।

सम्राट् श्रेणिक बौद्धधर्मका पालन करके भी इस वासनासे बचे नहीं थे। उन्हें भी अनाथ-निरपराध पशुओंके प्राण-अपहरण करनेका शौक था। इस अदयापूर्ण शौकका नाम लोगोंने "आखेट" "शिकार" रख छोड़ा है।

इसी शौकके आवेशमें आकर कदाचित् एक दिवस सम्राट् श्रेणिक घोड़ेपर आरूढ़ हो सामान्तों और आखेट-स्वानोंको साथ ले गहन वनकी ओर रवाना हो गये। सूर्यकी तपशमें घोड़ा दौड़ाते वे इधर उधर 'शिकार' की फिक्रमें दौड़ रहे थे। उन्हें उस समय और किसी बातकी सुधबुध नहीं थी। एक मात्र मूक पशुओंको खोज अपने बाणका निशाना बनानेका ही स्मरण सवार था। यदि कहीं सघन वनमें पेड़की बगलमें हिरणोंका झुण्ड दिखाई पड़ गया तो उधर ही आखेट पार्टी जा टूटी।

बेचारी हिरणी नवजात शिशुको दूध पिलाती रह गई। बच्चेका मुंह मांके थनोंमें ही अटका रह गया। उधर निष्ठुर बाणने आकर दोनोंके नैसर्गिक प्रेमका अन्तर कर दिया! नेत्र एक टक उन बिचारे गरीब माता-शिशु पशुके-भावकी ओर आश्चर्यमें टंगेके टंगे ही रह गये, परन्तु उनकी भूप 'अहिंसा'का असर किञ्चित् न गया। आज मनुष्य जाति पर जो दुःखोंके पहाड़ आ आकर पड़ रहे हैं वह इन्हीं 'निर्जीव-वादों'का परिणाम है।

हा! माता और पुत्रके वियोगका दुःख कभी इन 'शौकीन' साहिबानने खयाल किया है? क्या कभी अपने कलेजे पर हाथ धरकर दर्याफ्त किया है कि इसका क्या परिणाम होता है?

अपने इकलौते लाड़ले बेटेको खिलातेर यदि किसी निर्दईकी तलवारका वार उनके उस अलौकिक सुखके अभिनयका अन्त करदे तो क्या उन्हें वह दशा सहज सहनीय होगी? कभी इस भीषण घटनाका चित्रपट तो अपने मस्तिष्कमें खींच उसके दारुण हृदयग्राही दृश्यका अभिनय देख लीजिए! अनुभव कीजिए और फिर देखिये कि क्या आपका हृदय ऐसे पैशाचिक कार्यके करनेके लिए तैयार होता है?

व्यसनमदमें मदमाते सम्राट् श्रेणिक शिकार खेलते खेलते आखिर अपने राजभवनकी ओर लौटने लगे। सामन्तगण मृत-पशुओंको लिये और आखेट, स्वानोंको घेरे साथ२ जारहे थे। एक छोटीसी पहाड़ीके पाससे होकर वे लोग जारहे थे। हरे२ वृक्ष-लताएं चहुंओर फैली फल-फूल रहीं थीं और कलरव नाद करता एक छोटासा झरना वह रहा था। यह छोटीसी उपत्ययिका बडी ही मनोहर और सुन्दर प्रतीत होती थी। शांति और क्षमताका साम्राज्य वहां छारहा था।

सम्राट् श्रेणिकका वीभीत्स-कर्मसे चुककर वहां होकर निकलना मानो उस प्राकृतिक सौन्दर्यको कलंकित करना था।

उस ओरको भी मानो इनके इन अप्राकृतिक कार्योंपर रोष आगया हो। वहां इनका एक ऐसी घटनासे समागम हुआ कि जिसके फलस्वरूप इन्हें वर्षों दुःखोंके पाले पड़ना पड़ा।

सम्राट् श्रेणिक उस उपत्यकामेंसे प्राकृतिक सौन्दर्यपर दृष्टि फेरते चले जारहे थे कि सहसा उनकी चितवन एक ओर रुका गई। वह उधर ही टकटक निहारने लगे, वह न जान सके कि यह चित्रलेखसा खड़ा नग्न पुरुष वास्तवमें कोई जीवित प्राणी है अथवा किसी महान पुरुषकी प्रतिमूर्ति है? इसका तेजोमय मुख और प्रभामंडलसे व्याप्त शरीर अवश्य ही किसी महान पुरुषके अस्तित्वका द्योतक है। यह प्रतिमूर्ति नहीं है, कोई महाऋषि ही ध्यानमें लीन है ऐसा सम्राट्को विश्वास हो गया।

वास्तव यह ठीक भी था। यह महान ऋषि जैन मुनि यशोधर महाराजके सिवा और कोई न थे! वे वहां पर तद्रूपस्थ ध्यानारूढ़ थे, वे परमज्ञानी और परमध्यानी आत्मतत्वका दर्शन करनेवाले परम मुनि थे। उनका मन उनके आधीन था, उनकी इन्द्रियां उनके वश थीं, उनका ध्यान सदा शुद्धात्मामें लीन था। उनके परिणाम सदा सबपर समभावरूप रहते थे। उन्हें न किसीसे हित था और न किसीसे द्वेष; शत्रु, मित्र, कांच, कंचन, रणवास, वनवास उनके लिए सब समान थे। आचार्य कहते हैं कि उस समय मुनिजी:-

"ज्योतिरूपं परं चित्ते, ध्यायंत संगवर्तितं ।
निस्पृहं निर्म्मलं शांतं, लातमात्रं कलानिधिं ॥"

भाव यह है कि वे मुनिराल पर्यंक् आसनसे ज्योतिरूप परमात्मावस्थाका ध्यान कर रहे थे; निस्पृह थे, निर्मल थे, शांत थे और मुनिसंघमें कलानिधिरूप थे, अक्षय अनंत गुणोंके भंडार थे, असंख्याती पर्यायोंके युगपत् जानकार थे, देदीप्यमान् निर्मल ज्ञानसे शोभित थे, भव्यजीवोंके उद्धारक और उन्हें उत्तम उपदेशके दाता थे। सम्राट् श्रेणिकने अपने सुभटोंसे पूछाः—"सामन्तो! नग्न, स्नानादिसे रहित, निश्चल ध्यानमें लीन यह ऋषि कौन हैं?" उत्तरमें सामन्तोंने कहा—'कृपानाथ! यह महाराणी चेलनीके गुरु निर्ग्रंथ मुनि हैं।'

बस वहां कहने मात्रकी ही देरी थी। सम्राट् श्रेणिक तो महाराणी चेलनीसे अपने गुरूओंका बदला लेनेके लिए लालायित थे ही। ज्यों ही सामन्तोंके यह बचन सुने, मारे क्रोधके उनका शरीर भभकने लगा। वे मन ही मन विचारने लगे—'राणीने अनेक प्रकारके उपद्रव कर इस समय मेरे गुरु व्याकुल कर रक्खे हैं। उनका बुरी तरह अपमान किया है। यह अवसर उसका बदला लेनेका अच्छा है। आज राणीका गुरु भी मुझे मिला है अतः मैं भी इसका अपमान करूंगा और कष्ट दूंगा।' इस प्रकार पापोंके संचय करनेवाले विचार करके राजा श्रेणिकने शीघ्र ही तीक्ष्ण दाढ़ोंके धारक क्रूर पांचसौ कुत्ते

मुनिके ऊपर छोड़ दिये, परन्तु आत्मिक प्रभाव भी अपूर्व होता है। पौद्गलिक संसार उसके महत्वको सहज समझ नहीं सकता, परन्तु साम्प्रत जीवित प्राणियोंके कतिपय उदाहरण इस विषयके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

म० गांधीजी एकबार नातालमें स्वयं अपने मित्रके साथ एक अंग्रेजके यहां मिलने गये थे। वहां उसके बंगलेमें एक खार खूंखार कुत्ता बैठा था। इनके घुसते ही वह इनपर अकदम टूट पड़ा। गांधीजी घबड़ा गये, परन्तु अंग्रेज मित्र जरा भी विचलित नहीं हुआ। उसने मुस्कराते हुये उस खूंखार कुत्तेको इस तरह भेंट लिया जिस तरह कोई अपने मित्रसे मिलता है। कुत्ता अपनी सब क्रूरता भूल गया। इसी तरह अन्य उदाहरण भी मिल सकते हैं, जैसे कि आचार्य मुनि शांतिसागरजीका एक सर्पसे समागम हुआ, वह उनके शरीरपर केलि करता रहा, परन्तु बोला नहीं, जब आजकल प्रत्यक्षमें इस प्रकार आत्म-प्रभाव देखनेमें आता है तब उस प्राचीन कालके महान् मुनिजनोंका प्रभाव सहज अनुभवगम्य है। उस समयके मनुष्य अवश्य ही वर्तमानकालीन जीवोंसे आत्मवादमें बडे चढ़े थे। ऐसी अवस्थामें मुनिराज यशोधरजीका यदि क्रूर कुत्तोंपर प्रभाव पड़ जाय तो कोई आश्चर्य नहीं है। आचार्य कहते हैं कि:—

'मुनिराज परमध्यानी थे। उन्हें अपने ध्यानके सामने

इस बातका जरा भी विचार न था कि कौन दुष्ट हमारे उपर क्या अपकार कर रहा है ? इसलिए ज्यों ही कुत्ते मुनिराजके पास गये और ज्यों ही उन्होंने मुनिराजकी शांतमुद्रा देखी, सारी क्रूरता उनकी और किनारा कर गई। मंत्रकीलित सर्व जैसा शांत पड़ जाता है-मंत्रके सामने उसकी कुछ भी तीन-पांच नहीं चलती, उसी प्रकार कुत्ते भी शांत हो गये। मुनि-राजकी शांतमुद्राके सामने उनकी कुछ भी तीन पांच न चली। वे मुनिराजकी प्रदक्षिणा देने लगे और उनके चरणकमलोंमें बैठ गये।'

(श्रेणिकचरित्र पृष्ठ २०२)

कुत्तोंको इस प्रकार क्रूरता त्याग प्रदक्षिणा देते देखकर सम्राट् श्रेणिकका शरीर मारे क्रोधके पजल गया। उसने समझा कि इस पाखंडी मुनिने मंत्रके बल कुत्तोंको कील दिया है। बस वह स्वयं झट मुनिकी ओर झपटे कि बीचमें उनकी दृष्टि बिकराल सर्प पर पड़ गई। सम्राट्ने उसहीको मार कर क्रोधपूर्वक मुनिराजके गलेमें डाल दिया इस रौद्र ध्यानके परिणाम स्वरूप उन्हें महातमा नरकमें तेतीस सागरकी आयुका बंध हुआ ! सप्तम नर्कमें वचन अगोचर घोर दुःख ही सहन करना पड़ता है। बिना विचारे जो कोई कुछ कार्य कर पड़ता है उसके फलरूप उसे महत्कष्ट सहन करना पड़ता है। जैन सिद्धान्तमें फल प्राप्ति परिणामाधीन बताई गई है।

सम्राट् श्रेणिक वहांसे सीधे राजमहलकी ओर चल दिये और उधर मुनिराज यशोधरने जब अपने गलेमें सर्प पड़ा जाना तब उन्होंने अपना ध्यान और भी अधिक बढ़ा दिया और उपसर्ग जानकर बारहभावनाका चिंतवन करने लगे। इधर श्रेणिक राजगृहमें पहुंचे और उन्होंने बौद्ध गुरुओंसे एक दिगम्बर जैन मुनिका जो उक्त प्रकार अपमान किया सो कह सुनाया। बौद्ध गुरुओंको यह वृतान्त सुन बड़ी प्रसन्नता हुई। वे बराबर श्रेणिककी प्रशंसा करने लगे, 'किन्तु साधु होकर उनका यह कृत्य उत्तम न था। साधुका धर्म मानापमान, सुखदुःखमें समानभाव रखना है।'

इस घटनासे तीन दिनतक तो महाराज श्रेणिक राजकाज आदिमें व्यस्त रहे। वे महाराणी चेलनीके महलोंमें नहीं जासके। चौथे दिन वह वहां गये, और कौतूहलपूर्वक उन्होंने वह सब वृतांत रानीसे कह सुनाया जो उन्होंने मुनिराजके साथ किया था। धर्मवत्सल महाराणी सम्राट्के बचनोंके सुनते ही कांप गई। उसका हृदय दहल गया, वह मुनिपर घोर उपसर्ग जान अनेक प्रकार शोक करने लगी। उसके नेत्रोंसे अविरल अश्रुधारा बहने लगी, उसके करुण विलापसे महाराजका हृदय पसीज गया। वह सान्तवनारूपमें कहने लगे-"प्रिये, तू रञ्चमात्र भी शोक मतकर। वह मंत्रवादी पाखंडी साधु वहांसे कबका चलता बना होगा व उसने अपने गलेसे सर्प निकालकर फेंक दिया होगा।"

महाराजके यह बचन सुन चेलनीने कहा-"राजन्! आपका यह कथन भ्रममात्र है। यदि वे साधु मेरे पवित्र गुरु होंगे और न उन्होंने अपने गलेसे सर्प हटा निकाला होगा। अचल मेरुपर्वत भले ही चलायमान हो जाय, परन्तु धीरवीर मुनिराज उपसर्ग आनेपर जरा भी विचलित नहीं होते हैं।

नाथ! 'क्षमाभूषणसे भूषित दिगंबर मुनि अचल तो पृथ्वीके समान होते हैं और समुद्रके समान गंभीर, वायुके समान निष्परिग्रह, अग्निके समान कर्म भस्म करनेवाले, आकाशके समान निर्लेप, जलके समान स्वच्छ चितके धारक एवं मेघके समान परोपकारी होते हैं। प्रभो! आप विश्वास रक्खें जो गुरु परमज्ञानी, परमध्यानी, दृढ़ वैरागी होंगे, वे ही मेरे गुरु हैं, किन्तु इनसे विपरित परीषहोंसे भय करनेवाले, अतिपरिग्रही व्रत तप आदिसे शून्य, मधु मांस मदिराके लोलुपी एवं महा पापी जो गुरु हैं सो मेरे गुरु नहीं। जीवन सर्वस्व! ऐसे गुरु आप हीके हैं। न जाने जो परमपरीक्षक एवं अपनी आत्माके हितैषी हैं, वे कैसे इन गुरुओंको मानते हैं? उनकी पूजा प्रतिष्ठा करते हैं?' *आपने बड़ा अनर्थ किया! वृथा ही अपनी आत्माको दुर्गतिका पात्र बना लिया।"

रानीके ऐसे युक्तिपूर्ण बचन सुनकर सम्राट् श्रेणिकका हृदय भी भयसे कांप गया। उन्होने उसी समय मुनिराजके

---

* श्रेणिकचरित्र पृ० २०७

निकट जानेके लिये अपनी इच्छा प्रकट की। चेलनी और श्रेणिक उसी समय मुनि महाराजके निकट पहुंचे। वहां दम्पतिने देखा कि मुनिराज एकदम ध्यानारूढ़ थे। उन्हें इस बातका ध्यान नहीं था कि उन्हे कष्ट दिया जा रहा है। वह अपनी शांतमुद्रासे पूर्ववत् प्रभावान थे। मुनिराजको देखते ही चेलनीका शरीर रोमांचित हो गया। वह शीघ्र ही मुनिके पास पहुंची और चट उनके गलेसे सर्प निकाल कर फेंक दिया और चिंउटी आदि भी पोंछकर साफ कर दीं। उपरान्त मुनिराजके शरीरको गरम पानीसे धोकर उसपर शीतल चंदनका लेप कर दिया। 'एवं मुनिराजको भक्तिपूर्वक नमस्कार कर मुनिराजकी ध्यानमुद्रापर आश्चर्य करनेवाले, उनके दर्शनसे अतिशय संतुष्ट, वे दोनों दम्पति आनन्दपूर्वक उनके सामने भूमिपर बैठ गये।'

मुनियोंके लिए यह आवश्यक है कि वे रात्रि समय मौनव्रतका अवलम्बन रक्खें; तदनुसार उस समय मुनिराजने कोई बचनालाप नहीं किया। प्रातः पौफटते ही रानीने पुनः मुनिराजके चरणोंका प्रक्षालन किया और उनके चरणोंकी भक्तिभावसे पूजा कर अपने पापको शांतिके लिये वह उन यशोधर मुनिराजकी इस प्रकार स्तुति करने लगी :—

जयो साधु ! भू पै तुही है मुनीशा।
न है और दीखा समाचारऽधीशा॥
न वैरी किसीका न द्वेषी किसीका।

न रागी किसीका न मोही किसीका ॥
निजानन्द धारी, सुखारी ऋषीशा।
नरेशा सुरेशा सभी नांय शीशा ॥
नमो नाथ! कारुण्यके हो अधेशा।
क्षमाधीश हो औ अघोंके हनेशा ॥
पड़े बीच धारा बहोंको बचाया।
दुखी दीनको तू सुमार्ग सुझाया ॥
दया धार वेगी क्षमो पाप ईशा!
यशोधार वेशा! नमो वीर धीशा ॥

इस प्रकार रानीने पूर्ण भक्तिभावसे मुनिराजकी स्तुति की। और फिर दोनोंने मुनिराजके चरणोंको नमस्कार किया और यथास्थान बैठ गये। आचार्य कहते हैं कि—

द्वाभ्यामदायि मद्धमद्बुद्धिः श्री मुनिनाऽमुना।
तदा राजा निजे चित्ते दुखं चक्रे महोत्कटं ॥२३४॥
अहो मया कृतं नूनं पापं श्री मुनिघातजं।
तदाऽवोचद्दपी राजन्! मा दुखं कुरु चेतसि ॥२३५॥
आवश्यकं हि भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभं ॥२३६॥

(षट्पदी)

श्रुत्वा राजा तदाऽवोचत् चेलिनी प्राणवल्लभां।
हे रामेऽयं कथं वेद ममांतर्गतभावनां ॥२३७॥

अवोभणत्तदा राज्ञी का कथास्य लवस्य भो ।
प्रच्छय तं भवान् स्वीयॉस्तद्ऽऽशीद्भवान् मुनिं ॥३२८॥
(श्री विमलपुराण)

अर्थ—"जिस समय ' तुम्हारी धर्मवृद्धि हो ' यह मुनिराजने दोनोंको आशीर्वाद दिया अपनी भक्त रानी और द्वेषी राजामें कुछ भी भेदभाव न रख दोनोंको समानरूपसे समझा । उस समय मुनिराजकी यह लोकोत्तर क्षमा देखकर महाराज श्रेणिक बडे लज्जित हुये एवं अपने मनमें उग्र दुःख करने लगे। मुनिराजके शिष्ट वर्तावसे वे मन ही मन यह विचारने लगे—

हाय ! मैंने श्री मुनिराजके मारनेका घोर पाप किया है, मुझे धिक्कार है । मुनिराज दिव्यज्ञानी थे । अपने ज्ञानसे उन्होंने राजाके मनकी बात जानली । इसलिये वे यही कहने लगे कि— " राजन् ! तुम्हें अपने चित्तमें किसी प्रकारका दुःख नहीं करना चाहिये । जो शुभ और अशुभ कर्म किया गया है उसका अच्छा बुरा फल अवश्य भोगना पड़ता है । "

मुनिराजके यह अचरजभरे वचन सुन महाराज श्रेणिकने चेलिनीसे कहा—" प्रिये ! मेरे मनके भीतरकी बात मुनिराजने कैसे पहिचान ली ? "

उत्तरमे चेलिनीने कहा—" प्राणनाथ ! इस बातके लिये आप क्या अचरज कर रहे है ? मुनिराजने जो आपके मनका भाव पहिचान लिया वह तो बहुत ही तुच्छ बात है ।

यदि आप पूछना चाहैं तो अपने पूर्व भवोंका भी हाल पूछ सकते हैं।" चेलिनीकी यह बात सुनकर महाराज श्रेणिकने अपने पूर्वभवों—पहिलेके जन्मवृत्तान्तोंको पूछनेकी मुनिराजसे लालसा प्रगट की।"

मुनिराजने अपनी गम्भीर ध्वनिसे सम्राट्की इस लालसाकी पूर्ति की। वे जान गये कि आर्यखण्डके एक सूरकांत नामक देशके सूरपुर नगरके राजा मित्र और रानी भामिनीके मेरा जीव सुमित्र नामक पुत्र था। सुमित्रभवमें वह राजमन्त्रीके पुत्र सुषेणके साथ खेला करते थे। सुषेण बिचारा भोलाभाला था, सो सुमित्र उसे काफी मार मारा करता। सुमित्र जब राजा हुआ तो उसके क्रूर स्वभावका भयकर सुषेण दिगम्बर मुनि हो गया। सुमित्रने बहुत चाहा कि वह पुनः गृहस्थावस्था स्वीकारकर राजमन्त्री हो जावे; परन्तु धीरवीर मुनि सुषेणने यह मंजूर नहीं किया। हठात् राजा सुमित्रने जब यह दृढ़ निश्चय देखा तो प्रेमवश भोजन ग्रहण करनेका आमन्त्रण देने लगे; परन्तु उसको भी मुनिराजने अस्वीकार किया, क्योंकि ऐसा करनेसे उन्हें अनुमोदना दोष लगता था। उधर राजाने स्वयं आहार देनेके निमित्त नगरमें मुनिराजको आहार देनेकी मना ही कर दी, परन्तु दुर्भाग्यवश आहारके निमित्त जबर मुनिराज आए तबर राजा किसी आवश्यक कार्यमें व्यस्त हो मुनिराजके आहारकी बात भूल जाता था।

मुनिराज अन्तराय जान निराहार बनको लौट जाते थे। अन्तिमबार जब मुनिराज लौटे जारहे थे तब उनके कानमें लोगोंकी चरचाकी भनक पड़ गई कि यह राजा बड़ा भारी पापी है। न तो स्वयं मुनिराजको आहार देता है और न किसी अन्यको देने देता है। अशुभोदयसे यह शब्द सुनते ही सुषेण मुनि राजापर आगबबूला हो गये। क्रोधके मारे उनके पैर लड़खड़ाने लगे। असमर्थताके कारण संभल न सके और जमीनपर गिर पड़े। गिरते ही क्रोधके आवेशमें अज्ञानतावश यह निदान किया कि 'मैं आगे ऐसा होऊं जो इस दुष्टको मार सकूं।' निदानके तीव्र पापसे वे मरकर व्यन्तर जातिके देव हुये। वस्तुतः इस प्रकारका क्रोध महा अनर्थकारी है। सुखके वांछिकोंको कभी भी क्रोध नहीं करना चाहिये।

राजा भी मुनिराजका इस प्रकार मरण सुन बड़ा दुःखित हुआ और राजकाज त्यागकर मिथ्यात्वी तपस्वी हो गया। कुतपके प्रभावसे वह मरकर मिथ्यादृष्टि देव हुआ और वही देव आयु पूर्णकर राजा श्रेणिक हुआ। सुषेणका जीव देव अपने निंदित निदानसे रानी चेलिनीके गर्भमें अवतीर्ण हो कुणिक नामक पुत्र होगा जो श्रेणिकको कष्टका कारण होगा। यह भी सम्राट् श्रेणिकको मालूम हो गया। मुनिराजके मुखसे इस प्रकार अपने पूर्व भवके वृतान्त सुन सम्राट्को भी अपने पूर्वभवका

स्मरण हो आया। वे मुनिराजके गुणोंको लक्ष्यकर इस प्रकार विचार करने लगे:—

"अहा! मुनि यशोधरका ज्ञान धन्य है। उत्तम क्षमा भी इनकी प्रशंसाके लायक है। परीषहोंके जीतनेमें धीरता भी इनकी लोकोत्तर है। इनके प्रत्येक गुणपर विचार करनेसे यही बात जान पड़ती है कि मुनि यशोधरसा परम ध्यानी, परमज्ञानी मुनि शायद ही संसारमें होगा!

श्री जिनेन्द्र भगवानका शासन ही संसारमें धन्य है! जिनागममें जो तत्व कहे गये हैं, और उनका जिस रीतिसे स्वरूप वर्णन किया गया है वह सर्वथा सत्य है। जिनोक्त जीवादि तत्वोंसे भिन्न तत्व मिथ्या तत्व है।

यशोधर मुनिराज अपने व्रतमें सर्वथा दृढ़ है, साधुओंके वास्तविक लक्षण मुनि यशोधरमें ही संघटित होते हैं, एवं महाराजकी विचारसीमा और भी चढ़ गई। वे मन ही मन यह भी कहने लगे कि जो साधु भोले जीवोंके वंचक है, विषयी लम्पटी हैं, हाथी, घोडा, माल खजाना, स्त्री आदि परिग्रहोंके धारक हैं, वास्तविक ज्ञान ध्यानसे बहिर्भूत हैं, वे नामके ही साधु हैं। पाखण्डी साधु कभी भी गुरु नहीं बन सकते। वे संसारमें डूबानेवाले हैं।

इस प्रकार विचार करते करते महाराज श्रेणिकको अपनी आत्माका कुछ वास्तविक ज्ञान हो गया। रानी चेलनी सहित

महाराज श्रेणिकने विनयसे मुनिराजके चरणोंको नमस्कार किया, एवं मुनिराजके गुणोंमें संलग्नचित्त, उनकी वारंवार स्तुति करते हुये महाराज श्रेणिक और चेलनी आनन्दपूर्वक अपने राजमंदिरकी ओर चल दिये।"

(श्रेणिकचरित्र पृष्ठ २२६)

सम्राट् श्रेणिकने अपनी परमप्रिय जिनधर्म भक्त रानी चेलनीके साथ बड़े ठाटवाटके साथ राजमहलमें प्रवेश किया और वे सानन्द जिन भगवानका पूजन, स्तवन और आराधना करते हुये राजमन्दिरमें रहने लगे।

(९)

सम्राट् श्रेणिककी सम्यक्त्वमें दृढ़ता

समकित सहित आचार ही संसारमें इक सार है।
जिनने किया आचरण उनको नमन सौ सौ वार है॥

सांसारिक प्रपंचोंमें फँसे हुये प्राणियोंके लिये यह सुगम नहीं है कि वे अपनी चिरकालीन मिथ्याबुद्धिको शीघ्र ही त्याग दें। यदि सौभाग्यवश शुभ अवसर पर उन्हें वास्तविक आत्म-तत्वके दर्शन हो जांय और वे उसे ग्रहण भी कर लें, परन्तु मिथ्या भ्रमका मोह फिर बीचमें आ खडा होता है। दूसरे मिथ्या बुद्धियोंकी सहायता मिलते वे भडक उठते हैं।

उस समय प्रकृत-मार्ग यही है कि वास्तविक तत्वोंकी यथार्थ परीक्षा की जाय। तुलनात्मक रीतिसे यथार्थ तत्वोंको पानेके प्रयत्न किये जांय। केवल अन्ध श्रद्धानसे न जीवकी संतुष्टि होती है और न वह वास्तविक श्रद्धान ही है।

यदि जिनप्रणीत तत्वोंमें पूर्ण श्रद्धा प्राप्त करना अभीष्ट हो तो इतना ही पर्याप्त नहीं है कि लोकानुसार पानी छानकर पीना, दिनमें भोजन कर लेना आदि कतिपय रीतियोंका पालन और जिन भगवानकी प्रवृत्ति अनुसार दर्शन पूजन कर लिया जाय। इस प्रकारकी सामान्य ज्ञान प्राप्तिसे जिनोक्त तत्वोंमें दृढ़ श्रद्धान होना मुश्किल है।

इस प्रकारके सामान्य ज्ञानधारक व्यक्ति किसी विधर्मी वाक्चाल तर्कवादीके समक्ष अपने धर्मश्रद्धानको सहसा दृढ़ नहीं रख सकते हैं तिसपर धर्मका पूर्ण परिचय न होनेसे वे अपने जीवनको धर्मानुकूल नहीं बना सकते हैं। आजकलके जैनियोंमें जो अज्ञानता और चारित्रहीनता फैल रही है वह इस ही त्रुटिका कारण है, अतएव भाइयो और बहिनोंको धर्मका पूर्ण ज्ञान स्वयं प्राप्त करना परमावश्यक है तथा पुत्र-पुत्रियोंको करना भी उतना ही जरूरी है। केवल मामूली बातोंकी जानकारीसे ही कोई धर्मका जानकर नहीं हो सकता और न वह आत्मकल्याण कर सकता है।

जिस प्रकार लौकिक विद्याका मामूली जानकार उच्च कोटिके व्यापार आमद करनेमें लाचार होता है तथा उतना लाभ नहीं उठा सकता जितना कि एक विशेष लोक-ज्ञानका धारी कर सकता है। उसी तरह सामान्य ज्ञान केवल कोई भी वास्तविक सम्यक्त्वको प्राप्त नहीं कर सकता है और न वह उतना आत्मकल्याण कर सकता है जितना कि एक ज्ञानवान धर्मालु व्यक्ति कर सकता है। सम्राट् श्रेणिक यशोधर मुनिराजके निकट जैनधर्म ग्रहण कर आए थे, परन्तु पूर्णतया उनका श्रद्धान तब भी सच्चे देव, शास्त्र और गुरुपर नहीं हुआ था।

बौद्ध साधुओंको ज्यों ही सम्राट् श्रेणिकके जैन धर्मानुयायी होनेका हाल ज्ञात हुआ तो वे सब उनके पास आए और

तर्क-वितर्कसे उन्हें समझाने लगे। अन्तमें उन्होंने देखा कि हमारी यहां एक भी नहीं चलती है तब उन्होंने कहा कि—

"राजन्! तुम जैनधर्मको धारण तो करते हो, परन्तु ठीक समझ सोचकर धारण करना जिससे पीछे पश्चात्ताप न करना पड़े।"

बौद्ध गुरुओंके इन वाक्योंका असर सम्राट्के हृदयपर कुछ पड़ गया। 'प्रबल पवनके सामने अचल भी वृक्ष कहांतक चलायमान नहीं होता? कुतर्कसे मनुष्यके सद्विचार कहांतक किनारा नहीं कर जाते? ज्योंही महाराजने बौद्धोंका लम्बा चौड़ा उपदेश सुना' पानीके अभावसे जैसा अभिनव वृक्ष कुम्हला जाता है' महाराजका जैनधर्म रूपी पौधा कुम्हला गया। अब उनका चित्त फिर डांवाडोल हो गया, उनके मनमें फिरसे जैनधर्म एवं जैन मुनियोंकी परीक्षाका विचार आकर सामने टुकराने लगा।'

सम्राट्के सिरपर जैनधर्मकी परीक्षाका कौतूहल सवार हुआ, वह उनके लिए हितकर ही था। सोनेको आंचमें तपानेसे उसका तो कुछ बिगड़ता नहीं, प्रत्युत वह तो और निखर जाता है, उसी तरह यथार्थ धर्मको परीक्षा करनेसे उसको तो कुछ भी क्षति नहीं होती, उल्टा उसका अटल सिक्का परीक्षकके हृदयपर जम जाता है। वह धर्मका गुलाम हो जाता है।

श्रेणिकने अपने निश्चय अनुसार परीक्षा करना प्रारम्भ

कर दिया। उन्होंने जैन मुनियोंकी परीक्षार्थ राजमहलमें एक ओर गुप्त रीतिसे गहरा गढ्ढा खुदवाया और उसे हड्डी, चर्म आदि अपवित्र पदार्थोंसे भरवाकर बन्द करवा दिया। प्रत्युत वहांपर अच्छी तरह सफाई करवा दी, और रानी चेलनीसे जाकर कह दिया—

"कांते ! जब मैं जैनधर्मका परिपूर्ण भक्त हो गया हूं। मेरे समस्त विचार बौद्ध धर्मसे सर्वथा हट गए हैं। कदाचित् भाग्यवशात् यदि कोई जैन मुनिराज मंदिरमें आहारार्थ आवें तो तुम इस पवित्र मंदिरमें आहार देना और उनकी भक्ति सेवा-सन्मान भी खूब करना।"

रानी चेलनी बडी बुद्धिमती थी। महाराजके यह आकस्मिक वचन सुन उसे विस्मय हुआ। वह समझ गई कि इसमें कुछ गूढ रहस्य है। क्षणिक विचार करनेसे उसे श्रेणिककी मनोगत भावनाका परिचय मिल गया। वह उनके अभिप्रायको जानकर चौकन्नी हो गई और जैन मुनियोंकी परीक्षाका समय है-यह उसको विश्वास हो गया।

कदाचित् एक दिन तीन मुनिराज मंदिरमें आहारके लिए आए। राजा श्रेणिक शीघ्र ही राजमहलमें दाखिल हुये और चेलनी समेत उनका पड़िगाहन किया। मुनिराज यथास्थान आकर ठहर गए। महाराणीने उनको भक्तिभावसे नमस्कार किया और धर्मकी पूर्ण विनय रखते हुये उसने इस खयालसे

कि कहीं धर्मपर किसी प्रकारका आघात न पहुंचे, अपनी तीन उंगलियां उठाकर यह भाव प्रकट किया कि मनोगुप्ति, बचन-गुप्ति और कायगुप्ति नामक तीनों गुप्तियोंके धारक मुनिराज ही मेरे राजमंदिरमें आहार निमित्त ठहरें। इन आगत मुनियोंमें कोई भी तीनों गुप्तियोंका धारक नहीं था इसलिए वे अपनी दो२ उंगलियां उठाकर बनकी ओर प्रस्थान कर गए। धर्म-प्रभावनाको लक्ष्य कर रानीने यहां बुद्धिमत्तासे काम लिया।

आजकलकी बहिनें धर्मज्ञानसे शून्य होनेके कारण धर्म-प्रभावनाके महत्वको समझनेमें लाचार हो रहीं हैं। वे नहीं जानती कि किस कार्यके करनेसे धर्मकी हंसी होती है। इसी अज्ञान अवस्थामें वे देई-देवता पूजती हैं, शीतलादेवीकी मानता मानती हैं। जिससे उल्टे धर्मकी अप्रभावना होती है। बहिनोंको ऐसा कोई कार्य नहीं करना चाहिये जिससे सत्य-धर्मकी हंसी हो और आत्माका अकल्याण हो!

आजकल हम बहुधा देखते हैं कि घरोंमें हमारी बहू-बेटियां मर्दोंको ऐसे कार्य करनेको बाजी दफे मजबूर करती हैं कि जिनसे लोगोंमें धर्मकी हंसाई होती है। छोटी उमरमें लड़कोंके विवाह करनेके लिए, जीवित प्राणियोंसे निकाली हुई चर्बी जिनमें लगी हुई है ऐसे कपड़ोंको लानेके लिए तथा कीड़ोंको उबालकर बनाए गए रेशमको ही पहिननेके लिए बहुधा हमारी बहिनें जिद कर पाडती हैं जिससे लोगोंमें

जैनियोंकी हंसाई होती है। हमारी बहिनोंको यदि जिद करना हो तो बालक बालिकाओंको अच्छी तरह पढ़ानेके लिए, कन्याओंको प्रौढ़ अवस्थामें (१४–१५ वर्षकी उमरमें) योग्य नीरोग वरसे विवाह करनेके लिए एवं धर्मपूर्ण कार्योंको करनेके लिए करना चाहिये। इसीमें उनकी तथा उनके धर्मकी प्रभावना है। महाराणी चेलनीका धर्मप्रभावनाके प्रति उत्कृष्ट भाव था।

जिस समय दो गुप्तियोंके धारक तीनों मुनिराज राज-महलसे लौट गए, उसी समय गुणसागर नामक मुनिराज भी राजगृहमें आहारार्थ आए थे। उन्हें अपने अवधिज्ञानके बलसे राजाके मनोगत भावका परिचय प्राप्त हो गया। वे सीधे राजमन्दिरकी ओर चल आए। उनको नतमस्तक हो रानीने नमस्कार किया एवं वह विनयपूर्वक इस तरह कहने लगी—

"हे त्रिगुप्तियोंके पालक परमोत्तम मुनिराज! आप राजमन्दिरमें आहारार्थ ठहरें।"

मुनि गुणसागरने यह वचन सुन शीघ्र ही अपनी तीन उंगलियां उठा दीं। मुनिराजकी तीन उंगलियां देख महाराणी अतिप्रसन्न हुई। राजा श्रेणिकने उनको पड़गाहकर उनके चरणोंका प्रक्षाल किया। राजमंदिरके भोजनालयकी ओर राजाकी प्रार्थनानुसार ज्यों ही मुनिराज बढ़े और वहां उपस्थित हुये तो उन्हें अपने अवधिज्ञानके उपयोगसे विदित हो गया कि

यह स्थान अपवित्र है। 'वे तत्काल ही यह कह कि राजन्! तेरा घर अपवित्र है, वहांसे घर लौटे और ईर्यापथसे जीवोंकी रक्षा करते हुये बनकी ओर चले आये।'

राजाश्रेणिक इस प्रकार अकारण मुनिराजोंका बिना आहार लिए लौट जाना देख क्षुभित हुये। वे महारानीसे पूंछने लगे—

"प्रिय रानी! तीन मुनि जो आहारके लिये राजमंदिरमें आए थे वे बिना आहारके राजमंदिरसे क्यों लौट गये?"

'उत्तरमें रानीने कहा—"प्राणनाथ! मैं भी कुछ नहीं समझ सकी। चलो अपन दोनों उनके पास चलें और उनसे विना आहार लिए लौट आनेका कारण पूछें।" बस, दोनों ही सवारियोंपर चढ़कर वनकी ओर चल दिये।' सबसे पहिले वे प्रथम धर्मघोष नामक मुनिके पास गये और उनसे विनय-युक्त राजमन्दिरसे विना आहार लौट आनेका कारण पूछा।

मुनिराजने कहा—"जिस समय हम राजमन्दिरमें आहारार्थ प्रविष्ट हुए उस समय रानीने हमें तीन उंगलियां दिखाई थीं, जिससे रानीका भाव हम समझ गये। राजन्! हमारे तीन गुप्तियां थीं नहीं, केवल दो गुप्तियां थीं, इसलिये हम विना आहार लिए लौट आये।"

राजाके पूंछने पर मुनिराजने अपने मनोगुप्तिका अभाव बताया और उसके न होनेका कारण बताया। उन्होंने कहा

कि "कलिंगदेशमें एक दंतपुर नामका नगर है। मैं वहांका एक बहुत बड़ा राजा था। भोजनके लिये विहार करता करता मैं एक दिन कौशांबी नगरीमें जा निकला। वहांके राजाके मन्त्रीका नाम गरुडदत्त था और उसकी स्त्री गरुड़दत्ता थी, जिस समय वह केवल मुझे ही आहार दे रही थी, प्रबल कर्मके उदयसे एक ग्रास मेरे हाथसे नीचे जमीन पर गिर गया। ग्रासके गिरते ही मेरी दृष्टि भी उस ग्रासपर पड़ी तो रमणी गरुड़दत्ताका पैरका अंगूठा मुझे दीख पड़ा। कर्मकी प्रबलतासे उस अंगूठेके देखनेसे मुझे अपनी स्त्रीके अगूठेका स्मरण उठ आया। एवं सहसा मेरे मनमें यह भावना खड़ी हो गई कि अहा! ऐसा ही सुन्दर अंगूठा मेरी रानीका था। बस राजन्! उस दिनसे आजतक मेरे मनोगुप्तिका उदय नहीं हुआ।"

(श्री विमलपुराण पृष्ठ ७०-७१)

मुनिराज धर्मघोपकी कथा सुनकर श्रेणिक और चेलनी दूसरे मुनि जिनपालके पास गए और उनको विनय सहित नमस्कार करके राजमहलमें अकारण विना आहार किए लौट आनेका कारण पूछा। उन्होंने उत्तरमें उक्त प्रकार यही कहा कि 'मेरे कायगुप्ति नहीं थी। इसलिए मैं राजमन्दिरमें विना आहार किए लौट आया।' कायगुप्ति न होनेका कारण पूछनेपर मुनिराजने सब हाल खुलासा यों कह दिया—

"भूमितिलकपुरका स्वामी प्रजापाल है। उसकी पटरानीका

नाम धारिणी और उससे उत्पन्न एक मृगांका नामकी कन्या है। अत्यन्त रूपवती जान चंडप्रद्योतन (उज्जैनके राजा) ने उसे प्रजापालसे सरलतापूर्वक मांगी थी. परन्तु अभिमानी प्रजापालने उसे नहीं दी जिससे चंडप्रद्योतन क्रोधसे भभक गया। राजा प्रजापालको वश करनेके लिये यह चतुरंगसेनासे व्याप्त हो भूमितिलकपुरकी ओर चल दिया एवं चारों ओरसे नगर घेर लिया। दोनों ही राजा रणकुशल थे, दोनोंका आपसमें प्रतिदिन युद्ध होने लगा।...

संग्राममें राजा प्रजापालको हार खानी पडी। हार कर प्रजापाल खिन्न हो घरमें बैठा ही था कि वनपालके मुखसे उसने मुझ जिनपालका वनमें आना सुना और मेरी वंदनाके लिये चल दिया, एवं मेरे पास आकर नमस्कार करके वह इस प्रकार बिनयपूर्वक कहने लगा—भगवान्! मैं आपकी शरणमें आया हुआ हूं। आप मेरी रक्षा कीजिए, सेवकको दुःखी जान शीघ्र चिंता मेटिये। मैं तो उस समय कुछ नहीं बोला, परन्तु वनदेवताकी ओरसे यह आकाशध्वनि हुई कि प्रजापाल! तुम किसी प्रकारका भय मत करो विजय तुम्हारी ही होगी।

राजा प्रजापालने वनदेवताकी इस ध्वनिको मेरा वचन जानकर और यह पक्का श्रद्धान कर कि मुनियोंका वचन सत्य होता है, वह अपने राजमहल लौट गया। एवं तैयारी कर रणभूमिमें आधमका। राजा चंडप्रद्योतनको किसी तरह यह

ख्याल गई कि राजा प्रजापालकी विजय है इसलिए वह उसे जैनी मान अपने घर जाने लगा तब रणके लिये सर्वथा तैयार राजा प्रजापालने अपने कुछ सुभट राजा चंडप्रद्योतनके पास भेजे और वे कहने लगे कि भाई, रणको छोडकर तुम क्यों जारहे हो ? उत्तरमें चंडप्रद्योतनने गंभीर वचनोंमें कहा कि समस्त जैनी मेरे बंधु हैं और मित्र हैं, मुझे उनके साथ युद्ध नहीं करना चाहिये। राजा प्रजापालकके सुभटोंने चंडप्रद्योतनका संदेशा उससे जाकर कह दिया। चंडद्योतनके यह वचन सुन राजा प्रजापाल प्रसन्न हो गया। एवं कामकी मंजरी स्वरूप अपनी मृगनयनी कन्याका उसके साथ विवाह कर दिया।*

"रमणी मृगांका और चंडप्रद्योतन एक दिन

आपसमें रमण क्रीडा कर रहे थे उस समय चंडप्रद्योतनने कहा—'प्रिये ! तुम्हारा पिता जैनी था इसलिए मैंने उसे रण-संग्राममें छोड दिया था, यदि कोई दूसरा होता तो मैं उसे नहीं क्षमा करता।'

अपने स्वामीके ऐसे बचन सुन रमणी मृगांकाने कहा—'प्राणनाथ ! मुनिराज जिनपालने उन्हें अभयदान दिया था इसलिए वे आपसे नहीं जीते जासके।' अपनी रानीके ऐसे बचन सुन चन्डप्रद्योतनको बड़ा आश्चर्य हुआ ! वह कहने लगा—मुनियोंकी तो शत्रु मित्रमें समान वृत्ति रहती है इस-लिये न तो वे किसीसे द्वेष कर सकते हैं और न किसीसे राग कर सकते हैं। तुम जो कह रही हो यदि वह बात सत्य ही है तो चलो, अपन मुनिराजके पास चलें और यथार्थ बात उनसे पूछें। बस वे दोनों मुझ जिनपालको वंदनेके लिये चल दिये।

मुझे देखकर भक्तिपूर्वक नमस्कार किया एवं अपने हृदयका भाव राजा चण्डप्रद्योतन इस प्रकार व्यक्त करने लगा—" भगवन् ! योगी लोग किसीका तो अभय चिन्तवन करें और किसीका नाश चिन्तवन करें, क्या यह बात जैन सिद्धांतमें ठीक मानी गई है ? मैंने इस बातका कोई उत्तर नहीं दिया—मौन धारण कर ध्यान करने लगा। रानी मृगांकाने कुछ भी उत्तर न देते जब मुझे ध्यानलीन देखा तो

उसने राजा चंडप्रद्योतनसे कहा—'नाथ! मुनिराजने अभय-दानका सूचक वचन नहीं कहा था, किंतु उस प्रकार आकाश-ध्वनि हुई थी।' रमणी मृगांकाके ऐसे वचन सुन दोनोंकी भ्रांति मिट गई और वे दोनों अपने राजमहल लौट आये। मैं भी उस उपसर्गसे अपनेको मुक्त जान राममंदिरमें आहारके लिये गया।" *

वहां रानी चेलनीने तीन उंगलियां उठाकर मुझे तिष्ठनेको कहा था। मैं तीन गुप्तिका धारक नहीं था इसलिये लौट आया था। जरासी चूकके कारण मुनिराजको वचनगुप्तिकी प्राप्ति नहीं हुई। फिर भला उन व्यक्तियोंका कहां ठिकाना है जो दिनरात अपने आपको मन-वचन-कायके आधीन बनाये रखते हैं-विषयवासनामें तन्मय रहते हैं। सम्राट् श्रेणिक मुनिराजके कथनको सुन अति प्रसन्न हुए।

मुनिराज जिनपालके निकटमें फिर श्रेणिक और चेलिनी मुनि मणिमालीके पास गये और उनसे महलसे विना आहारके लौट आनेका कारण पूछने लगे। मुनिराजने अपने कायगुप्तिका न होना इसमें कारण बतलाया और वह उनके क्यों नहीं हुई? इसका खुलासा इन्होंने बतलाया कि वे मणिवतनगरका राजा मणिमाली थे। उनकी गुणमाला रानीसे मणिशेखर नामका पुत्र था। सब लोग सानन्द काल यापन कर रहे थे कि एक

* विमलपुराण ७३-७४

रोज रानी गुणमालाने उनके बालोंमें एक सफेद बाल देख कहा कि 'यमराजका दूत आ पहुँचा है। अब शीघ्र आत्माका हित करना चाहिये।'

रानी गुणमालाके यह वाक्य सुनते ही मणिमालीको संसारसे वैराग्य हो गया। उन्होंने अपना राजपाट अपने सुयोग्य पुत्रके सुपुर्द किया और आप दिगंबर मुनि हो गये। मुनि अवस्थामें विहार करते वे एक दिन उज्जयनी पहुंचे और वहां भी श्मशान भूमिमें ध्यानकी सिद्धि निमित्त निश्चलरूपसे स्थिर हो गये।

'उसी समय एक लौकिक (कोरिया) मंत्रवादी—जो कि हड्डियोंके भूषणोंसे भूषित था, भूतोंका सेवक था और नग्न रूपका धारक था महाबैतालीय विद्या सिद्ध करनेके लिये वहां आया, ध्यानमें स्थित उनके शरीरको उसने मुर्देका शरीर समझा। कहींसे वह एक दूसरा मस्तक उठा लाया और उसने पीछेसे उनके मस्तकके साथ साथ जोड दिया। खीर पकानेके लिये उसने उनके मस्तकका ही चूला बनाया और अग्नि जलाना प्रारम्भ कर दी।' ज्यों ज्यों अग्नि सुलगती गई उन मुनिराजके मस्तकको पीडा भी बढ़ती गई, उसकी वेदना नरकके दुःखसे कुछ कम न थी; परन्तु उसकी उपेक्षा करके उन्होंने अपना उपयोग निज आत्मस्वरूपकी ओर संचित कर लिया। अन्ततः अग्निकी तपशसे उनकी नसें संकुचित हो गई, जिससे उनके

दोनों हाथ ऊपरको उठ गये। उसी समय मस्तकपर जो पात्र चढ़ा हुआ था वह गिर पड़ा और उसके गिरते ही मारे भयके वह मंत्रवादी भाग गया। उन धीरवीर मुनिराजका प्रायः सारा मस्तक जल चुका था।

प्रातःकाल वहांके वनमालीने मुझे देख, मेरा सब हाल उस नगर निवासी जैनियोंसे कह दिया। जैनियोंने मुनिराजके दुःख समाचार सुनते ही वनकी ओर प्रस्थान किया। वे इस उपसर्गपर दयाभावके मारे हाहाकार करने लगे। वस्तुतः धर्म-वत्सलोंके लिये धर्म अथवा धार्मिक पुरुषोंपर किया हुआ आघात असह्य होता है।

जिसको धर्ममें सच्चा श्रद्धान होगा वह प्राण रहते कभी भी धर्म और धार्मिक पुरुषोंका अपमान अथवा उनपर किया गया आक्रमण चुपचाप नहीं देख सकेगा, वह भरसक प्रयत्न उसके निराकरणको करेगा, परन्तु दुःख है कि आजकल जैनियोंमें यह दृढ़ता नहीं रही है। वे चुपचाप धर्म और धार्मिक स्थानों एवं व्यक्तियोंपर आज दिन किए गए उपसर्गोंको चुपचाप सहन कर रहे हैं। कितनी भीरुता है? इससे ही उनके धार्मिक श्रद्धानका पता चल जाता है।

आज हमको खबर मिलती है कि श्री सोनागिरिपर उपसर्ग हुआ—श्री परमपूज्यनीय भगवत्की मूर्ति खंडित कर दी गई तो फिर वही दारुण ध्वनि दूसरी दफे द्रोणगिरिसे सुनाई

पड़ती है! हमारी धार्मिक दृढ़ता इतनी हीन हो गई है कि हम अपने पूज्य स्थानोंका भी समुचित प्रबंध नहीं कर सकते। धार्मिक दृढ़ताको बढ़ाये हमारे जीवन सुखमय नहीं हो सकते।

इसलिए भाइयों और बहिनों! धर्म के ऊपर तन, मन, धन सब कुछ निछावर करनेके भावको अपनाना परमावश्यक है। उज्जयनीके जैनी धर्म-परायण थे। वे चट वनमें पहुंचे और सेठ जिनदत्तके घरमें उन मुनिराजको ठहरा दिया।

धर्मवत्सल सेठने एक वैद्यराजसे मेरी नीरोगताके लिए औषधि पूछी। वैद्यराजने लाक्षामूल तैल बताया; जो वहींके सोमशर्मा नामक ब्राह्मणसे यहां मिल सकता था। सेठ जिनदत्त शीघ्र ही सोमशर्मा ब्राह्मणके घर पहुंचे। वहां उस ब्राह्मणकी पत्नी तुंकारी थी। उससे सेठने लाक्षामूल तैलकी याचना की।

तुंकारीने सहर्ष वह तैल विना मूल्य ही ऊपरके अड्डेमेंसे तैलकी शीशी ले लेनेको कह दिया। तुंकारीकी इस प्रकारकी सज्जनता देख सेठ जिनदत्त बड़े प्रसन्न हुये। वे चट ऊपर चढ़ गए और एक शीशी तैलकी उठाई कि वह वहीं सहसा टूट गई। शीशी टूटी देख सेठको भय हुआ। उसने डरते हुये तुंकारीसे यह हाल कहा। तुंकारीने विना किसी विषादके पुनः एक और शीशी ले लेनेकी अनुमति दे दी। इस प्रकार बराबर सात शीशियां टूट गईं, परन्तु तुंकारीने तनिक भी विषाद नहीं किया और न मुंह सकोड़ा ही!

आजकल हमारी बहुतसी बहिनें किसी पड़ोसीके कुछ मांगनेपर पहिले ही मुंह बिगाड़ लेती हैं, परन्तु इस बातका ध्यान रखना आवश्यक है कि संसारमें बिना एक दूसरेकी सहायताके काम नहीं चलता है। आज यदि किसीके पड़ोसीको उससे कोई काम पड़ा है तो कल उस व्यक्तिको भी अपने पड़ोसीसे काम पड़ेगा। इससे सबसे प्रेमपूर्ण व्यवहार रखना हितकर है।

उधर सेठ जिनदत्तको तुंकारीकी यह लोकोत्तर क्षमा देख बड़ा आश्चर्य हुआ। इसलिए प्रेमसे गद्गद् हो वह इस प्रकार कहने लगा:—

"हे माता ! जैसी अद्वितीय क्षमा तुम्हारे अन्दर विद्यमान है वैसी किसी मुनिके अन्दर भी नहीं दीख पडती। सात शीशियोंके फूटनेसे तुम्हारी बहुत हानि हुई है तथापि तुम्हें तनिक भी क्रोध नहीं आया।"

जिनदत्तके ये वचन सुन तुंकारीने कहा—"भाई ! क्रोधका मैं भयंकर फल भोग चुकी हूं। इसलिये मैंने क्रोध करना एकदम छोड दिया है।"

तुंकारीके ये वचन सुन जिनदत्तने कहा, सो कैसे ? उत्तरमें तुंकारी इस प्रकार कहने लगी:—

पृथ्वानन्दपुरे भ्रात शिवशर्मा नृपो धनी।
नाम्ना श्रेष्ठी बभूवात्र कमश्रीस्तस्य भामिनी ॥८३६॥

तयोरष्टौ महापुत्रा बभुवुः सधनोन्मदाः।
अहं भद्रेति नाम्नी वै पुत्री जाता विचक्षणा ॥४३७॥

अर्थात्—आनन्दपुरनगरमें एक शिवशर्मा नामका सेठ है जो कि धनमें राजाकी तुलना करता है। उसकी स्त्रीका नाम कमलश्री है। सेठ शिवशर्माके आठ पुत्र हैं जो कि धनी और निर्भय हैं। मैं एक पुत्री हूं और मेरा नाम भद्रा है।

मैं इतनी घमंडिन थी कि मुझसे जो तू कहकर बोलता था वह मुझे विष सरीखा जान पड़ता। मेरे पिताका मुझपर गाढ़ स्नेह था, वे मुझे सुखी बनानेके लिए राजासे मुझे तू न कहनेकी आज्ञा ले आए। जब राजाकी वैसी आज्ञा मिल गई तब मेरा और भी अधिक साहस बढ़ गया और मैंने खुले शब्दोंमें सबके सामने कह दिया कि जो कोई मुझसे तू करके बोलेगा मैं उसका अनर्थ कर डालूंगी। बस लोगोंने उस दिनसे मेरा नाम तुंकारी रख दिया। यद्यपि मेरे पिता आदि मेरा पूरा आदर करते थे तथापि मैं सदा गुस्सा होकर घरमें रहती थी।

आनन्दपुरमें एक दिन मुनिराज गुणसागर पधारे। राजा आदि सब उनकी वन्दनाके लिए गये, मैं भी गई। उपदेशके अन्तमें सबने अपनी २ शक्तिके अनुसार संसारसे पार करनेवाले व्रत नियम लिये, मैंने भी शीलव्रतका नियम ले लिया। भाई जिनदत्त! मैं उस दिनसे लेकर भाइयोंके साथ रहने लगी।

मेरे क्रूर स्वभावको जानकर कोई भी मेरे साथ विवाह करनेको राजी नहीं होता था।

एक रोज मुझे पूर्ण युवती देख मेरे माता-पिता मेरे योग्य वर ढूंढनेके लिये चिन्ता करने लगे। सोमशर्मा नामका ब्राह्मण जोकि इस समय मेरा स्वामी है ज्वारिओंके अड्डेमें जुआ खेल रहा था।

दैवयोगसे वह अपने पासका सब धन हार गया जिससे अन्य ज्वारी उसे बांधकर मुक्कोंकी मार मारने लगे। मेरा पिता भी वहाँ आ निकला और वरके योग्य सुन्दर जान सोमशर्मासे कहने लगा—'यदि तुम मेरी कन्याके साथ विवाह करना पसन्द करो तो मैं तुम्हें छुड़ा लूं!' सोमशर्माको परवश स्वीकार करना पड़ा एवं मेरे पिताने उसे छुड़ाकर यह प्रतिज्ञा करा ली कि मेरी पुत्रीसे तू कड़कर न बोलना होगा। बस सोमशर्माने मेरे साथ विवाह कर लिया और समय२पर भोगोंसे जायमान सुख भोगे।

एक दिन मेरा स्वामी नाट्यशालामें नाटक देखनेके लिये गया। देखतेर आधी रात होगई। इसलिए आधी रातपर वह अपने घर लौटा, एवं दरवाजेपर आकर इस प्रकार कहने लगा—'प्रियतमा! कृपाकर आप द्वार खोलें।' मैंने दरवाजा नहीं खोला, अतः मेरे स्वामीको क्रोध आगया। इसलिये वे यह कहने लगे—

'अरी ! तू दरवाजा खोल।' बस मैं मारे क्रोधके भभक गई और कुछ भी न बोलकर एकदम घरसे बाहिर हो गई। वह समय ठीक आधी रातका था और मैं भूषण पहिने थी इसलिए चोरोंने मुझे देख लिया। मुझे पकड़कर वे अपने स्वामी भीम नामक भीलके पास ले गए और बड़े आदरसे भेंट कर दी। मेरे सौन्दर्यपर मुग्ध होकर भीमने कहा—

'बाले ! तू मेरी पत्नी हो।' उत्तरमें मैंने कहा—

'भीम ! मैं कुल-स्त्री हूं। कुल-स्त्रियोंके लिए यह कार्य करना युक्त नहीं।' भीम कामसे अति व्याकुल था उसने मेरी नहीं सुनी, वह बलपूर्वक काम सेवनको मेरे पास आ गया और डाट डपट करने लगा। शीलके माहात्म्यसे वनदेवी प्रगट हुई और उसने भीमको तथा उसके सेवकोंको फटकार डाला क्योंकि देवगण शीलकी प्रशंसा करते हैं।

इस संसारमें शीलसे बढ़प्पन होता है तथा इस शीलसे चक्रवर्तीपना, स्वर्गपना, मोक्षपना भी दुर्लभ नहीं है। जब भील भीमकी कुछ भी नहीं चली तब वह बड़ा क्रोधित हुआ एवं एक ऐसे व्यापारीके साथ—जो कि निरन्तर पापरूपी कीचड़में फंसा रहता था और अत्यन्त दुष्ट था, मुझे मूल्य लेकर बेच दिया।

वह दुष्ट प्रतिदिन मुझे शक्कर आदि मिष्टान्न खिलाता था व हरएक पक्षमें मेरी नसोंसे रक्त निकालता था और उस

रक्तसे कंबलोंको रङ्गता था एवं विशेषकर रेशमको रङ्गता था। जिस समय नसोंसे रक्त निकलता था उस समय मुझे भयंकर कष्ट होता था। उसके पास यही लाक्षामूल नामका तैल था इसलिये मेरे शरीरके कष्टको वह दूर करता था। मैं भी परवश हो सदा भयभीत होकर उसके घर रहती थी। उस समय प्रतिक्षण मुझे इस बातका विचार उठता था कि घरमें मैं "तू" शब्द भी नहीं सह सकती थी और यह मैं यहां भयंकर कष्ट भोग रही हूं।*

कर्मोंकी गति अति विचित्र है। पापोपार्जन कर कोई सुखी नहीं रह सकता। तुंकारीने पतिदेवकी अवज्ञा की और क्रोधका आश्रय लिया उसका प्रत्यक्ष फल उसे मिल गया। पाप किसीका सगा नहीं जो कुछ रियायत कर दे! हां! पुण्य-कर्म ही सदा सहायक हो सकता है। शुभ शीलव्रतके प्रभावरूप तुंकारीकी वनदेवीने आकर सहायता की। वस्तुतः आपत्त आनेपर भी भाइयों और बहिनोंको शीलादि शुभ व्रतोंको त्यागना हितकर नहीं हो सकता। उन शुभ कार्योंको त्यागनेसे पापाश्रव होता है, जिसके फलस्वरूप दुःख भुगतने पड़ते हैं।

आज हमारी बहिनोंपर वृद्धविवाह, अनमेल विवाह आदि पैशाचिक रिवाजोंके रूपमें घोर सामाजिक अत्याचार किये जाते हैं, जिनके फलरूप उनके जीवन दुःखमय हो जाते हैं। यही दुःखमय दशा उनकी परीक्षाका समय है।

* सिद्धपुराण पृ० ५८-६१

इस समय उन्हें अपने धर्मसे चलित नहीं होना ही सुखकर हो सकता है। बेशक समाजका यह घोर अन्याय है कि उसने अयोग्य बुड्ढोंके साथ उनका सम्बन्ध कर उन्हें अकालमें ही वैधव्य दुःख भोगनेको मजबूर किया है। यह बिलकुल सच है कि अयोग्य बाल अथवा रोगी पतिके गले बांध तुम्हें कष्ट सहन करनेको बाध्य किया है, परन्तु उसका प्रतीकार यह नहीं है कि तुम अपने शीलधर्मको नष्टकर पतित बनो, अपनी आत्माको दुःखोंके जंजालमें डालो। रोगी अथवा अयोग्य पतिकी उपेक्षा करके परपुरुषको गले लगाना कभी भी श्रेयस्कर नहीं! इससे लोकहंसाई तो होती ही है, परन्तु आत्म-पतन भी खूब होता है।

एक तरहसे यह कहा जा सकता है कि बहिनोंके पाप-जीवन व्यतीत करनेसे ही स्वयं उनके जीवन दुःखपूर्ण बन रहे हैं और उनके साथ पुरुषोंको भी कष्ट सहन करने पड़ रहे हैं। यदि बहिनोंको सुखकी वाञ्छा है तो उन्हें कुशील सेवनका त्याग अवश्य करना चाहिये। नराधम पुरुष आपके शील प्रभावके समक्ष नतमस्तक होंगे। यदि विधवा बहिनें गृहस्थीमें धर्ममय जीवन बितानेको असमर्थ हों जैसे कि वे खासकर होती ही हैं, तो उनके लिए यही सर्वोत्कृष्ट उपाय है कि वे श्राविकाश्रमोंमें प्रविष्ट हो अपना आत्मकल्याण करें। ज्ञानोपार्जनकर वे अपने जीवनको सफल बनानेका मार्ग स्वयं समझ सकेंगी, इसीलिए शीलकी मान्यता ही सुखकर है। तुंकारीको

यदि विपत्तिमें किंचित् सहायता मिली तो इस ही शीलव्रतके पुण्य प्रभावसे और अन्तमें उसका उद्धार भी इसहीके पुण्य-प्रतापसे हुआ।

एक रोज वैशालीके स्वामीने तुंकारीके भाई धनदेवको पारासर राजाके पास भेजा था। दैवयोगसे वह वहींसे निकला जहाँ तुंकारी रहती थी। उसने अपनी बहिनका वहांसे उद्धार किया और घर लाकर उसके पति सोमशर्माके साथ कर दी।

उस समयकी बहिनोंके भाग्य अच्छे थे जो पुनः तुंकारीको उसके पति तथा समाजने स्वीकार कर लिया। आज पुरुषोंके दिमाग इतने चढ़े हुये हैं कि वे इस प्रकार विपत्तिमें पडी हुई बहिनको सहसा पुनः स्वीकार करनेको राजी नहीं होते। इस अन्यायाचारका बदला प्रकृतरूपमें मिल रहा है। समाजका जीवन संकटमें है, बहिनोंकी संख्या दिनोंदिन पुरुषोंसे कम होती जाती है। यदि अब भी परिस्थिति और यथार्थताको समाज अपना ले तो उसका जीवन सुखमय बन जावे। प्रथम ही अनमेल विवाहका कालामुंह करना आवश्यक है और प्रत्येक जैनीके साथ विवाह सम्बन्ध स्थापित करना लाजमी है। स्वयं वणिकपुत्री तुंकारीका विवाह सोमशर्मा ब्राह्मणसे हुआ था तो फिर आज अपनी भलाईके लिए सब जैनी यदि परस्पर रोटी-बेटी व्यवहार करने लगें तो कोई हानि नहीं है और न शास्त्रविरोध है।

अपने पतिगृहपर पहुँचकर तुंकारीको एक रोज एक मुनिराजके दर्शन हो गये। उनके निकट उसने अनिष्टकारी क्रोधको सर्वथा त्याग दिया। इस प्रकार अपनी बीती सुनाकर सेठसे कहा—'भाई जिनदत्त! क्रोधको इस प्रकार दुःखदाई जानकर मैंने सर्वदा उसका त्याग कर दिया है।' हमारी बहिनोंको भी तुंकारीकी भांति इस कुसम्पकारक कोपको त्यागना पुण्यका कारण है।

सेठ जिनदत्त तेल ले घरपर आया और उस तेलके लगानेसे मुनिराज मणिमाली निरोग होगये। इतनेमें वर्षाकाल आ गया और चातुर्मासमें मुनिराज वहीं ठहर गए। जिनदत्तका पुत्र पक्का जुआरी था, इसलिए एकदिन अच्छी तरह सोच विचारकर सेठ जिनदत्तने एक रत्नोंसे भरा घड़ा मेरे निकट लाकर गाढ़ दिया। गाढ़ते समय उसका पुत्र देख रहा था। बस ज्योंही सेठ वहांसे हटे कि पुत्रने वह घड़ा निकाल लिया। मुनिराज उस लोभसे जायमान समस्त विचित्र कार्यको चुपचाप देखते रहे। इधर चौमासेके अन्तमें मुनिराज तो अन्यत्र विहार कर गए। उधर सेठ जिनदत्तने पृथ्वी खोदी, परन्तु घड़ा न पाया। सो वह लोभके वशीभूत हो इन मुनिराजपर संदेह कर इनको ढूंढ़ने निकला, भाग्यवश मुनिराज इसे मिल गये, प्रगट रूपसे तो वह कुछ न कह सका परन्तु अन्य कथाओं द्वारा वह अपना भाव कटाक्षरूपसे प्रकट करने लगा। मुनिराज भी कथा

वह उसका उत्तर दे देते थे। भाग्यवशात् जिनदत्तका पुत्र भी वहीं कहीं इन कथाओंको सुन रहा था। मुनिराजके विषयमें अपने पिताके दुष्ट भाव जानकर शीघ्र ही उसने वह घड़ा पिताके समक्ष ला रख दिया। इस घटनासे पिता पुत्रके हृदयपर द्रव्यकी असारताकी छाप बैठ गई जिससे वे संसारसे विरक्त हो मुनि हो गये। इसी कारणसे उन मुनिराजके कायगुप्ति नहीं थी जिसके न होनेसे वे विना आहार लिये ही राजमहलसे लौट आए थे। "इस रीतिसे तीनों मुनिराजोंके मुखसे भिन्न२ कथाके श्रवणसे अतिशय संतुष्टचित्त मोक्ष सम्बन्धी कथाके परमप्रेमी महाराज श्रेणिक मुनिराजको नमस्कार कर राजमंदिरमें गए। राजमंदिरमें जाकर सम्यग्दर्शन पूर्वक जैन धर्म धारण कर मुनिराजोंके उत्तमोत्तम गुणोंको निरन्तर स्मरण करते हुये रानी चेलनी और चतुरंग सेनाके साथ आनन्दपूर्वक राजमंदिरमें रहने लगे।"

गुणोंसे युक्त गुरुओंको पूजता हो, प्रशस्त भाषण करनेवाला हो, परस्पर विरोधसे धर्म अर्थ काम इन पुरुषार्थोंको साधन करनेवाला हो तथा इन तीनों पुरुषार्थोंको साधन करने योग्य जिसके स्त्री हो, घर हो, स्थान हो, लज्जावान् हो, जिसका शास्त्रोल्लेखानुसार आहार-विहार हो, सज्जन पुरुषोंकी संगति करनेवाला हो, बिद्वान हो, उपकारका माननेवाला हो, जितेन्द्रिय हो, शास्त्रविधिको श्रवण करनेवाला हो, दयावान हो, पापभीरु हो, तब कहीं वह एक साधारण गृहस्थ कहा जा सकता है। महाराज श्रेणिक उन सर्व गुणोंकर युक्त थे और परम बिद्वान एवं धर्मालु अर्द्धाङ्गनीने उनके लौकिक सुख बढ़ानेके साथ२ परभव सुधार दिया था।

सम्राट् श्रेणिकको अब महाराणी चेलिनीकी कृपासे जैनधर्ममें पूर्ण श्रद्धान हो गया था इसलिए जैन धर्मका पालन करते हुए वे आनन्दसे राज्यसम्बन्धी व्यवस्था करते हुए राजगृह नगरमें कालयापन कर रहे थे। "कभी वे दोनों दंपति जिनेन्द्र भगवानकी पूजा करने लगे। कभी मुनियोंके उत्तमोत्तम गुणोंका स्मरण करने लगे। कभी उन्होंने त्रेसठ महापुरुषोंके चरित्रसे पूर्ण प्रथमानुयोग शास्त्रका स्वाध्याय किया। लोककी लंबाई चौड़ाई आदि बतलानेवाले करणानुयोग वे पढ़ने लगे। कभी२ अहिंसादि श्रावक और मुनियोंके बतलानेवाले चरणानुयोग शास्त्रका उन्होंने श्रवण

लेनेमें मोह कर्म लज्जायमान होता है—मंद पड़ जाता है और उनके गुणगान करनेसे हमारे कर्म गलते हैं।

महारानी चेलिनी ऐसी ही पुण्यवान् नारीरत्न थी। उन्हीं के गाढ श्रद्धानसे और साक्षात् धर्मस्वरूप जैन मुनियोंके समागमसे महाराज श्रेणिकको पवित्र धर्मकी प्राप्ति हुई। वस्तुतः पुरुषके लिए स्त्री भी एक आश्रय है जिस प्रकार मुनियोंको केवल धर्म ही आश्रय है। सम्राट् श्रेणिक भी ऐसी गुणवती और रूपवती एवं सर्वोपरि धर्मवती पत्नीको पाकर कृतार्थ हो गए थे। इन दम्पति युगलके गृहस्थ सुखका अन्दाजा लगाना आजकलके हीन भागी मनुष्योंके लिए मुश्किल है।

प्राकृत प्रेमके प्रेरे दोनों ही सांसारिक मर्यादा—विवाह-बन्धनमें वेष्टित हुए फिर भला उनमें अप्राकृत अप्रेमको गंध पाना कहां संभवित हो सकता है? वह गृहस्थ सुखका पूर्ण आनन्द उठा रहे थे। आचार्य कहते हैं कि-गृहस्थ सुखके समुचित उपयोगके लिए श्रावकको निम्न विशेषणोंसे विशेष होना आवश्यक बतलाते हैं—

'न्यायोपात्तधनो यजन् गुणगुरून् सद्गीस्त्रिवर्गं भज-
-न्नन्योन्यानुगुणं तदर्हगृहिणी स्थानालयो ह्रीमयः॥
युक्ताहारविहार आर्यसमितिः प्राज्ञः कृतज्ञो वशी।
शृण्वन् धर्मविधिं दयालुरघभीः सागारधर्मं चरेत्॥'

अर्थात्—'न्यायसे जो धन उपार्जन करता हो, सम्यक्त्वादि

गुणोंसे युक्त गुरुओंको पूजता हो, प्रशस्त भाषण करनेवाला हो, परस्पर विरोधसे धर्म अर्थ काम इन पुरुषार्थोंको साधन करनेवाला हो तथा इन तीनों पुरुषार्थोंको साधन करने योग्य जिसके स्त्री हो, घर हो, स्थान हो, लज्जावान् हो, जिसका शास्त्रोल्लेखानुसार आहार–विहार हो, सज्जन पुरुषोंकी संगति करनेवाला हो, बिद्वान हो, उपकारका माननेवाला हो, जितेन्द्रिय हो, शास्त्रविधिको श्रवण करनेवाला हो, दयावान हो, पापभीरु हो, तब कहीं वह एक साधारण गृहस्थ कहा जा सकता है। महाराज श्रेणिक उन सर्व गुणोंकर युक्त थे और परम बिद्वान एवं धर्मालु अर्द्धाङ्गनीने उनके लौकिफ सुख बढ़ानेके साथ२ परभव सुधार दिया था।

सम्राट् श्रेणिकको अब महाराणी चेलिनीकी कृपासे जैनधर्ममें पूर्ण श्रद्धान हो गया था इसलिए जैन धर्मका पालन करते हुए वे आनन्दसे राज्यसम्बन्धी व्यवस्था करते हुए राजगृह नगरमें कालयापन कर रहे थे। "कभी वे दोनों दंपति जिनेन्द्र भगवानकी पूजा करने लगे। कभी मुनियोंके उत्तमोत्तम गुणोंका स्मरण करने लगे। कभी उन्होंने त्रेसठ महापुरुषोंके पवित्र चरित्रसे पूर्ण प्रथमानुयोग शास्त्रका स्वाध्याय किया। कभी लोककी लंबाई चौड़ाई आदि बतलानेवाले करणानुयोग शास्त्रको वे पढ़ने लगे। कभी२ अहिंसादि श्रावक और मुनियोंके चरित्रको बतलानेवाले चरणानुयोग शास्त्रका उन्होंने श्रवण

उपयोगी है इस हीके आधार पर अन्य आश्रम टिके हुए हैं। इसके ऊपर उन सबकी रक्षाका भार है। इस लिए यह सहजमें अन्दाजा जा सकता है कि एक गृहस्थका उत्तरदायित्व कितना विषम है, उसमें प्रवेश करना कोई हंसी खेल नहीं है। एक विद्वान् कहते हैं कि:—

" लोग बहुत सोच विचारकर इसमें प्रवेश करते थे, किंतु आजकल तो इस आश्रममें लोग आंख मूंदकर प्रवेश करते हैं। भारतमें विवाहकी ऐसी दुर्गति, ऐसी भरमार और ऐसी बुरी चाल हो गई है कि "कसेबाशद"-चाहे जो हो, विवाह अवश्य होना चाहिये। लूला हो, लंगडा हो, अपाहिज हो, वृद्ध हो, दरिद्र हो, कोढी या कलंकी हो विवाह अवश्य करे और किससे ? कृत्रिम कुण्डलीकी विधि मिल जाय, जिससे पुरोहितजीकी कमीशनकी लालच कुछ अधिक द्रव्य कमा सकती हो, जिस अभागिनीके पिता अधिक धन दहेजमें देनेमें असमर्थ हों, चाहे वह राजकुमारी हो, चाहे परम सुन्दरी हो, चाहे साक्षात् देवी ही हो, चाहे उसके गुण, कर्म और स्वभाव गृहलक्ष्मी बनने या बनाये जानेके हों, पर इससे क्या मतलब ? गुरु घंटालजीने तो ज्योतिष द्वारा विचार करके निश्चय कर दिया है कि विधाताने उस असहाय अनाथ अबलाका अमुक क्षय रोगग्रसित जर्जर पुरुषकी पत्नी होना लिख रक्खा है। उसी पतिके साथ पत्नीको सुख और आनन्द प्राप्त होगा!

तीन तीन बार कुमारी कन्यायोंको हड़प जानेसे) से नहीं होते हैं, बिचारियोंको कुमार्गमें आनेके लिए भड़काते हैं। खलियानमें चिनगारी डालनेकी देर अथवा भीतर ही भीतर भभकती आगपर घी पड़ा कि वह धधक गई। यही दशा विचारी निरपराध भोली विधवाओंकी होती है। फिर वह न घरकी और न घाटकी रह पातीं हैं।

पापका प्रायश्चित्त घोरतमपाप, भ्रूणहत्या करनेमें ही उनके लिए नियत है, अन्यथा उनका कहीं ठिकाना नहीं! यह घोर अन्याय है। अपनी भूलपर ध्यान न देकर अपने कियेको और अपने आपको दोष न देकर बिचारी अबलाओं अथवा उनके कर्मोंकी निन्दा करना बिल्कुल व्यर्थ है। विधवाओंके प्रति सबसे अच्छी भलाई यही है कि उनको श्राविकाश्रमोंमें सत्संगति और शिक्षाके लाभके लिए भेज दिया जावे। वहां वह अपने ज्ञान-नेत्र पा जाएंगी और अपना भविष्य उज्ज्वल बना लेंगी। हमारी बहिनोंको स्वयं ही पुरुष समाजकी इस ज्यादतियोंका घोर प्रतिवाद करना हितकर होगा।

किसी भी माताको अपनी पुत्रीका एवं स्वयं पुत्रीको अपना सम्बन्ध किसी भी अयोग्य अथवा वृद्ध पुरुषके साथ नहीं होने देना चाहिए। अपने अड़ोसी-पड़ोसी, भाई, रिश्तेदार, जातीय पंचायत आदिसे कहकर यह अनर्थ रुकवाना चाहिये। यदि यहांसे भी कुछ सहायता न मिले तो हाकिमोंको एक पत्र

विवाह सुखकी इच्छासे किया जाता है। इस महान् संस्कारसे आनन्द और प्रसन्नताकी अटूट धारा बहती देखकर सभी लोगोंके हृदयमें इस परम आनन्दके भोगनेकी प्रबल कामना उत्पन्न होती है। अपनी योग्यता और अयोग्यतापर ध्यान न देकर सभी स्त्री-पुरुष इस पुनीत तीर्थमें डुबकी लगाना चाहते हैं, पर फल आशाके विरुद्ध होता है।

जैसे मक्खियां शहद पीनेके लिए घडेपर जा बैठती हैं। उनमेंसे कोई कोई पीकर उड जाती हैं, पर बहुतोंके पंख और पैर चिपट जाते हैं और वे फंस जाती हैं तथा अनेक दुःख सहन करके मर जातीं हैं। ऐसे ही हम विवाहसे सुखकी इच्छा करके बन्धनमें फंस जाते हैं। कुछ लोगोंकी आशाएं तो पूर्ण होती हैं, पर बहुतोंको सुखकी अपेक्षा दुःख ही मिलता है और घोर विपत्तिका सामना करना पडता है।

हम आये तो सुख भोगने, पर पाने लगे कष्ट! शारीरिक सुखके लिये जलमें गोता लगाया, पर लगे डूबने। बैठे तो प्रेमरस पान करने पर हाथ पांव फंस गए; ऐसे जकड़ गए कि निकलना मुश्किल हो गया, छूटना दुर्लभ हो गया। हम जिन्दगीका मजा लूटने आए, पर लुट गई उल्टी हमारी जिन्दगी।

यदि विचार कर देखिए तो समस्त भारतमें [illegible] नतीके ही विवाहित स्त्री पुरुष एक दूसरेसे सन्तुष्ट पाये जां गे। कहीं

प्रत्येक स्थानकी पंचायतको ध्यान दे वास्तविक श्रावकगुणोंसे विभूषित अपनी संतान बनाना परम हितकर है। सम्राट् श्रेणिक और महारानी चेलनी इस विषयकी पुष्टिमें उदाहरणरूप उपस्थित हैं। उनके परस्पर किस प्रकार घनिष्ट प्रेम था और वे अपने कर्तव्योंको किस उत्तम प्रकारसे पालन करते थे, वह पाठकगण उनके पुनीत चरित्रसे जान सकते हैं।

सारांशतः महारानी चेलिनी सानन्द सम्राट् श्रेणिकके साथ गार्हस्थ्यक सुखका आनन्द भोग रही थीं। पूर्व पुण्योदयसे माता, पिताको सुखको करनेवाला समय उन्हें प्राप्त हुआ। महारानी चेलनी गर्भवती हुईं, परन्तु संसारमें मनुष्य जिस-प्रकार प्रथम ही प्रथम स्त्रीको गर्भवती देखकर हर्षित होते हैं उसी प्रकार संतानके होनेपर बहुधा उनको वह प्रसन्नता नहीं रहती है।

आजकल तो पुत्रसे ही प्रसन्नता मनाई जाती है परन्तु पुत्री होनेकी अवस्थासे खिन्नता धारण की जाती है! यह मनुष्योंकी भ्रमबुद्धि है। पुत्रीका जन्म किसी अवस्थामें अशुभ-सूचक नहीं हो सकता। स्त्रीसे तो स्वयं पुरुष समाजका जन्म है। वह तो इतना पवित्र है कि उनकी कोखसे त्रिलोक पूज्य तीर्थङ्कर भगवानका जन्म होता है। कन्याका जन्म कभी भी दुःखोत्पादक नहीं समझना चाहिये। आजकल तो समाजमें कन्याओंकी कमी है। इसलिए कन्याओंका जन्म पुत्रकी अपेक्षा

प्रसव किया। सम्राट् श्रेणिक ज्योंही उसको देखनेको गये कि पूर्व वैरके कारण उसको रोष आगया। उसकी मुट्ठी बंध गई। परन्तु महाराज श्रेणिकने इस बातकी ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। उन्होंने पुत्रोत्पत्तिके हर्षमें याचकोंको खूब दानादि दिया और महाराणी चेलनीकी भी खूब देखभाल रक्खी। उनकी सेवामें अनेकों धाय रक्खीं और थोड़े ही समयमें महाराणीका स्वास्थ्य अच्छा हो गया, किंतु महाराणीको अपने पुत्रके अनिष्टकारी होनेका दृढ विश्वास हो गया, इसलिए उन्होंने उससे मोह त्याग कर बनमें भिजवा दिया। ज्यों ही सम्राट् श्रेणिकने यह समाचार सुने वह पुत्रमोहको त्याग न सकें। उसे फौरन उठवा मंगवाया और एक धायके सुपुर्द पालन-पोषणके लिए दे दिया। यथावसर इस पुत्रका नाम कुणिक अजातशत्रु रक्खा गया। कुमार कुणिकके बाद महाराणी चेलनीके वारिषेण, शिव, हल्लक, विहल्लक, जितशत्रु एवं मेघकुमार नामक पुत्र और गुणमती नामक कन्याकी प्राप्ति हुई थी।

मेघकुमारके गर्भमें आनेपर महाराणीको अकालमें ही घने मेघोंको देखने और उनके मध्य विहार करनेका अपूर्व दोहला हुआ था। कुमार अभयने विजयार्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणीस्थ गगनप्रिय नामक नगरमें जाकर वहांके विद्याधरोंसे विद्या सिद्ध की और राजगृह लौटकर महाराणीके दोहलेकी पूर्ति कृत्रिम मेघोंकी रचना करके की। आजकलके विज्ञानवेत्ता

राजा उनके चरणोंकी सेवा करते थे। इस प्रकार वे महाराज श्रेणिक देवोंके इन्द्रके समान बड़ी विभूतिसे राज्यका पालन करते थे।

(विमलपुराण पृष्ठ ९२-९३)

पिता-पुत्र और माता पुत्री राजमहलमें रहते आनन्दसे कालयापन कर रहे थे। पुत्रों और पुत्रीको यथोचित् शिक्षा लाभ हो चुका था। पुत्र सर्व प्रकार निपुण थे। राजकुमारी भी सर्व कलाओंमें चतुर थी। वे सब अपने अपूर्व गुणोंसे महाराणी चेलनीके हृदयको रंजायमान करते थे।

राजकुमारी गुणमतीका प्रेम राजगृहके प्रसिद्ध वणिक श्रेष्ठी कुसुमदत्तकी पुत्रीसे था। इन सेठके यहां उज्जयनीके प्रख्यात् धनपाल सेठके पुत्र यशस्वी पुण्यवान् धन्यकुमार अतिथि बने हुए ठहरे थे। एक दिन सेठ-पुत्रीने इनके गुणोंकी परीक्षा निमित्त कुछ फूलहार गूंथनेके लिए दे दिये। धन्यकुमारने ऐसी चतुरतासे माला गूंथी कि सेठ-पुत्री देखती ही रह गई। उसने हृदयमें दृढ़ विश्वास कर लिया कि यही मेरा स्वामी होगा। वह हर्षसे प्रफुल्लित हो गई। कौतुहलवश उसने वह माला अपनी प्रिय सखी राजकुमारी गुणवतीको दिखाई और धन्यकुमारकी खूब प्रशंसा की। राजपुत्री भी उसके आग्रहसे धन्यकुमारको देखनेके लिये कुसुमदत्त सेठके घर चली आई।

जैन कवि फिर कहते हैं कि—

थी कि वह कौनसी शुभ घड़ी होगी जब मैं अपने हृदयकी प्रेमपुष्पाञ्जलि उन वणिक पुत्रके चरणकमलों पर अर्पित कर सकूंगी।

पाठकगण, शायद् अपनी बिगड़ी रीतियोंका ध्यान रखते हुए यह कहदें कि क्षत्रिय पुत्री गुणवतीका यह कार्य उचित नहीं था। वह क्षत्रियाणी और धन्यकुमार वैश्य! फिर भला उनका विवाह सम्बन्ध कैसे ठीक हो सकता है। परन्तु यह तो आपके हृदयका संकोच है। आपके पूर्वज आपके पूज्य आचार्योंने तो सर्व वर्णोंमें विवाह सम्बन्धकी आज्ञा दे रक्खी है। उनके वचनोंका पालन उस समय होता था इसी लिए गुणवतीका यह प्रेम अनुचित न था। उस समय यह छोटी जातियां नहीं थीं जो आजकल खण्डेलवाल, अग्रवाल आदि रूपमें हैं। यह तो वंशोंके बिगड़े हुये नाम हैं अथवा देश-भेद आदिके परिचायक हैं। इनसे आपसी भेद कुछ नहीं पड़ना चाहिये। धन्यकुमारके सम्बन्धमें आप ऊपर देखते हैं कि उज्जैनी जैसे दूरस्थ नगरसे आए हुए वणिक पुत्रके साथ राजगृहके सेठोंने अपनी कन्याओंका विना किसी संकोचके केवल उनकी योग्यता देखकर विवाह कर दिया था। वस्तुतः विवाहमें वरकन्याकी योग्यता ही देखना मुख्य है। जब वह सर्वथा उपयुक्त हो तब विवाह करनेमें हानि ही किस बातकी! क्योंकि यह तो प्रकट है जो कि सर्वथा योग्य व्यक्ति होगा वह तो स्वयं पुण्यवान् धर्मनिष्ठ होगा।

इस घटनासे मालूम होता है कि उस समयके क्षत्रियोंमें कोई ऐसा देश भेद अथवा रीति-भेद आदि नहीं था जो उनके परस्पर रोटी-बेटी व्यवहारमें बाधा डालता। आजकल जाति संकोचके कारण आचार्योंके वचनोंका तो अनादर होता ही है साथ ही हमारी हानि भी बहुत हो रही है।

सच भगवानकी आज्ञाओं न मानकर हम भला किस-तरह सुखी हो सकते हैं? आज जातियोंकी थोड़ी २ संख्या होनेके कारण योग्य सम्बन्ध नहीं मिलते हैं। बहुधा अनमेल विवाह ही होते हैं और बहुतेरी जातियोंमें तो इतनी विषमता आई हुई है कि यदि अन्य जातियोंसे रोटी-बेटी व्यवहार न रक्खा तो उन्हें आपसमें ही विवाह करने होंगे और अन्ततः सब मिटना होगा, इसलिए अपनी ही भलाईके लिए हमें भगवानकी आज्ञाको स्वीकार करना चाहिये। जितने जैनी धर्मी हैं उन सबमें परस्पर रोटीबेटी व्यवहार होना चाहिये, जिस तरह सेठ धन्यकुमारके समयमें होता था।

सेठ धन्यकुमारके प्रेममें बड़ी उत्कण्ठासे राजकुमारी गुणवती प्रतीक्षा कर रही थी। इतनेहीमें उधर एक रोज धन्यकुमार और अभयकुमारका समागम हो गया। एक द्यूत-खेलमें दोनों प्रवृत्त हो गये, धन्यकुमारने अभयकुमारके सर्व आभूषण जीत लिए। कुमार अभय उस समय तो सकुचाकर चले गए। दूसरे दिवस उन्होंने धन्यकुमारसे बाणविद्यामें

बाजी बदलनेके लिए कहा। धन्यकुमारने उनका चैलेंज स्वीकार कर लिया। बातकी बातमें उन्होंने अपने बाणसे लक्ष्यभेद कर दिया। सब ही उनकी इस कुश-लतापर हर्षित हुए। आजकलके हमारे युवकोंको धन्यकुमारके चरित्रसे शिक्षा लेनी चाहिये। अस्त्रविद्याको सीखना आजकल आवश्यक नहीं समझा जाता, परन्तु अपनी रक्षाके लिए उसका जानना बहुत जरूरी है।

राजकुमारी गुणमतीने जब यह समाचार सुने तो वह बडी प्रसन्न हुई। हठतः उसके इस प्रेमके समाचार सखीके मुखसे सम्राट् श्रेणिकको भी मालूम हो गए। वह विस्मित थे कि इस अज्ञात पुरुषके साथ किस तरह अपनी प्यारी कन्याका विबाह कर दें। अभयकुमारसे सम्मति मिलाइ तो उन्होंने भी पिताकी हांमें हां मिला दी। अभय धन्यकुमार पर वैसे ही खिजे हुए थे। उन्होंने सम्राट्को यह बुद्धि दी कि धन्यकुमारको ऐसा भयानक कार्य करनेको देना चाहिये जो उसहीकी पूर्तिमें उसका जीवनान्त हो जाय! तदनुसार वैसा ही किया गया; परन्तु पुण्यवान् धन्यकुमार वह कार्य बातकी बातमें कर आए। इस पर सम्राट्को विश्वास हो गया कि यह कोई सामान्य व्यक्ति नहीं है। उनका हृदय धन्यकुमारकी बुद्धिमत्ता पर गद्गद हो गया। कवि कहते हैं—

"इह बातें सुणि श्रेणिक राय, मनमांही अतिहरष उपांहि।
सब परिवार सहित भूपाल, आयो सो सनमुख ततकाल ॥

आदर दै निज थल ले गयौ, परम महोत्सव भूपति ठयौ।
वस्त्राभरण दैय भृंगार, पूज्यौ फुनि इम धन्यकुमार।
तुम गुण नरल वंश शुभ कहै, तौ पणमो मन पूछ्यौ चहै॥"

धन्यकुमारने अपना सब वृतान्त सम्राट् श्रेणिकको सुना दिया; जिसको जानकर वह परम हर्षित हुये। उनको पूर्ण विश्वास हो गया कि यह कुलवंत कुमार है, कोई साधारण पुरुष नहीं है कि जिसके साथ राजकुमारीका पाणिग्रहण कर दिया जाय तो उसे कष्ट सहन करना पड़े। सब ही राज्यजन धन्यकुमारका सन्मान करने लगे। सम्राट् श्रेणिकने भी अपनी पुत्रीकी योग्यताकी मन ही मन प्रशंसा की। वे उसकी पुरुष-परीक्षा पर मुग्ध हो गये। आज इस विद्याका नाम निशान भी सुननेमें नहीं आता। यद्यपि अब पुनः कतिपय हिन्दी विद्वानोंने इस विषयकी पुस्तकें लिखना प्रारम्भ कर दी है। बालक-बालिकाओंको इस विद्याका ज्ञान कराना आवश्यक है।

वास्तवमें एक राजकुलके लिये यह शोभनीक नहीं था कि वह एक दूसरे देशके अज्ञात व्यापारी (Enterprising Merchant) के साथ सहसा अपनी राजकुमारीका विवाह कर देते। इसी लिये जब अन्वेषण करनेसे धन्यकुमारको उन्होंने सर्वथा राजकन्याके योग्य पाया तो उनके साथ गुणवतीका विवाह करनेमें सम्राट् श्रेणिकको कोई आनाकानी नहीं रही। आनाकानीकी और कोई बात हा नहीं थी। धन्यकुमार सर्वथा

योग्य थे और उच्च कुलीन थे। वैश्यवर्णके थे, सो इसमें उस समय कोई बाधा नहीं मानी जाती थी। यह प्रकृत रूप है। भगवान ऋषभदेवने विवाहकी रीति तो स्वयं अपना विवाह करके सिरज दी थी, परन्तु उन्होंने अथवा उनके उपरांतके आर्ष पुरुषोंने ऐसे कोई भी विवाह संबंधी नियम नहीं बनाए थे कि अमुकर जातिमें ही रोटी-वेटी व्यवहार हो।

इसलिए उसी आर्ष मार्गपर पुरातन रीतिपर वणिक्पुत्र धन्यकुमारके साथ सम्राट् श्रेणिक अपनी कन्याकी शादी करनेके लिए तत्पर हो गये। गुणमतीका हृदयकमल खिल गया। कवि कहते हैं कि सम्राट् श्रेणिकने—

"तबही मनवांछित धन देश, दीने उत्तम महल महेश।
शुभ दिन वार मुहूरत मांहि, उत्सवसहित सुता परिणांहि॥
गुणमति सा कन्या मुखि जानि, और पंचदश सहित मिलान।
ऐसे षोडश कन्या सार, परणी तब ते धन्यकुमार॥"

युवावस्थाको प्राप्त धन्यकुमार तथा युवती राजकुमारी गुणमतीका विवाह सानन्द हो गया। पाठकगण देखिए यहांपर कितनी सादगीसे विवाहका विवरण दिया गया है। सिर्फ एक साधारण उत्सव मनाया गया और सानन्द विवाह हो गया। फिजूलखर्चीका कहीं नाम भी नहीं आया है।

आजकल हजारों रुपये फिजूलको बागबहारी-बखेर, नाच आदिके कार्योंमें खर्च किये जाते हैं, पहिले यह बात न थी।

अन्य जातियोंने ऐसी फिजूलखर्चियोंको कम कर दिया है परन्तु जैनी अभीतक नहीं चेतते हैं, यह दुःखका विषय है। वृथा आठ आठ, दश दश, मिठाइयां बनाकर पैसेका पानी करना हम नहीं समझते कहांकी बुद्धिमत्ता है। तिसपर खूबी यह कि बालक, बालिकाकी शिक्षाका भी समुचित प्रबन्ध नहीं किया जाता है, परन्तु फिजूलखर्चीमें हजारों रुपये खर्च कर दिये जाते हैं। धन और धर्मकी रक्षाके लिए पंचायती ठहराव इस विषयमें कर लेना लाभप्रद है।

धन्यकुमार और गुणवती सानन्द गृहस्थसुखका आनन्द भोगने लगे। अन्तमें धन्यकुमारने दिगम्बरी दीक्षा धारणकर, सर्वार्थसिद्धिको प्राप्त किया था। सम्राट् श्रेणिक भी चेलनी आदि राणियोंसहित सानन्द गृहस्थाश्रमके सुख भोग रहे थे। राजकुमारोंके विवाह भी उनके युवा और विद्याओंमें दक्ष होनेपर किये थे। हमारी भावना है कि उनके समान पुनः भारतमें गृहस्थाश्रमका आनन्द व्याप्त हो जावे और प्रत्येक व्यक्ति न्यायमय धर्मपूर्ण जीवन व्यतीत करने लगे।

(११)

भगवान महावीरका समवशरण

"अथैकदा महावीरो विपुलाचलमस्तके।
अपप्राप जगत्पूज्यः परमानंददायकः॥ ५३७॥
लेखेशानुमतात् श्रीदश्चक्रीतिस्म विष्टरं।
मरकतोद्धसत्पीठं चतुर्गतिविराजितं॥ ५३८॥

—विमलपुराण।

प्रारम्भके परिच्छेदमें पाठकगण देख आये हैं कि सम्राट् श्रेणिकके समय अथवा चेलनीके महाराणी पदपर विराजमान होनेके उपरांत इस आर्यावर्तमें चौबीस तीर्थंकरोंमें अन्तिम श्री वर्द्धमान महावीर भगवानका परम–पावन धर्मतीर्थ प्रवर्तमान हो गया था। ज्ञातवंशीय राजा सिद्धार्थके नन्दन इन भगवान् महावीरने तीस वर्षकी अवस्थामें श्रावकोंके व्रतोंका सुचारु रीतिसे पालनकर दिगंबरी दीक्षा धारण की थी।

छद्मस्थ अवस्थामें यत्र तत्र विहारकर और अनेक संकट एवं उपसर्ग सहनकर उनको ४२ वर्षकी अवस्थामें ऋजुकूला नदीके तटपर जृम्भक ग्रामके निकट सर्वज्ञता प्राप्त हो गई थी। वे परमपूज्य साक्षात् परमात्मा हो गए थे। उनके परमात्मा होनेपर स्वर्गके इन्द्रने उनका समवशरण रच दिया था और उनका प्राकृत रूपमें सर्व ओर विहार होने लगा था। लोग

उनके यथार्थ वस्तु स्वरूप धर्मामृतका पानकर आत्मस्वरूपको पा लेते थे और अविनाशी सुखका आस्वादन करते थे। इनके समयके अन्य धार्मिक नेता बुद्ध आदिका प्रभाव इस समय कम हो गया था। यहांतक कि इस समयका वर्णन ही उनके ग्रन्थोंमें नहीं मिलता।

इन्हीं परमकल्याणकारी परमात्मा महावीरका समवशरण एक दिन राजगृहके निकट अवस्थित विपुलाचल पर्वतपर आ गया। आचार्य कहते हैं कि—

"समस्त जगतके पूजनीक और परमानन्द प्रदान करनेवाले भगवान महावीरका वहां शुभ आगमन हो गया। इन्द्रकी आज्ञासे कुबेरने उनके समवशरणकी रचना की और उस समवशरणकी भूमि नीलमणिकी बनाई जो कि चार मनोहर मार्गोंसे शोभायमान था। वह समवशरण पांच विशाल उत्तमोत्तम भीतियोंसे शोभायमान था। बीस हजार पैड़ियोंका धारक था, बारह कोठे और मानस्तंभोंसे शोभायमान था उस समवशरणके अन्दर पद्मराग मणिके बने हुये सरोवर थे जो कि उत्तम कमलोंसे व्याप्त थे और हंस एवं सारस आदि पक्षियोंके शब्दोंसे शोभायमान थे। उस समय वहां गायोंके बच्चे सहस्र भक्त भी सिंहोंके बच्चोंके साथ थे। नौले सर्पोंके साथ स्वभावसे ही सानन्द क्रीड़ा करते थे। आपसमें कोई किसीसे वैर नहीं निभाता था। तीन जगतके स्वामी भगवान

जिनेन्द्रके माहात्म्यसे संसारके समस्त जीवोंका वा नौला सर्प आदि समस्त जीवोंका जन्म आदि तीन प्रकारका आपसी वैर नष्ट हो गया था। जल रहित समस्त बावड़ियें जलसे भरी हुई थीं, हंस सारस चकवा और कमलरूपी भूषणोंसे भूषित थीं।

जो वृक्ष सूखे पड़े थे वे लतापर्यंत फूल और फलोंसे नम्रीभूत हो गये। भौंरे घूमघूम कर गुञ्जार शब्द करने लगे और उनपर बैठ कर कोकिला मनोहर और मधुर आलापने लगीं। समस्त ऋतुओंके फल और फूलोंसे समस्त वृक्ष लदवदा गये। देवोंसे व्याप्त जैसी अप्सरायें शोभित होती हैं उसी प्रकार कमलोंसे व्याप्त वहांकी सरोवरी अत्यन्त शोभायमान् थीं तथा विशाल स्तनोंसे कंपित जैसा अप्सराओंका समूह अत्यन्त शोभायमान् दीख पड़ता है वैसा ही स्वर्णमयी लताओंका समूह भी अत्यन्त शोभायमान था।"

(विमलपुराथ पृ० ९३-९४)

वनपाल ज्योंही वहांपर आया उसने सब ओर बसन्तका ही दृश्य देखा, वह स्तम्भित रह गया। अगाडी तलाश करने पर उसे भगवानके शुभागमनके सुखद समाचार जान पड़े। वह मारे प्रसन्नताके उत्तम फलोंको ले- सम्राट् श्रेणिकके पास उसी क्षण संदेशा पहुँचाने गया।

सम्राट्के ज्यों ही यह समाचार कर्णगोचर हुये, उन्होंने वहींसे भगवानको परोक्ष नमस्कार किया। और नगरमें वन्द-नाकी घोषणा कराकर आप सर्व परिवार सहित भगवद्वन्दनाके

लिए प्रस्थान कर गए। महाराणी चेलनी भी साथ थीं, एवं सब पुरवासी भी साथ२ चल रहे थे। अगाड़ी मनोहर बाजे बजते जाते थे चारों प्रकारकी सेना भी अपना कौतुक दिखाती चल रही थी। वनमें पहुंचते ही ज्योंही राजा श्रेणिक और महाराणी चेलनीको मानस्तंभ दीख पड़ा त्योंही वे दोनों हाथी परसे उतर पड़े और दूरसे ही साष्टांग नमस्कार किया।

आचार्य कहते हैं कि "समवशरणके पास आकर 'निःसहि निःसहि निःसहि' इस प्रकार तीनबार निःसहि शब्दका उच्चारण करते और समवशरणके भीतर प्रवेश किया एवं उन्होंने भीतरकी उत्तरोत्तर वे समवशरणकी शोभा निरखने लगे। समवशरणके मध्यभागमें भगवान महावीर जिनेन्द्र विराजमान थे, जिनके दिव्य देहसे समस्त दिशायें जगमगा रहीं थीं। राजा श्रेणिकने उनकी तीन प्रदक्षिणा दी, भक्तिपूर्वक नमस्कार किया, पूजा की, पश्चात् अन्तमें स्तुति की व मनुष्य कोठेमें आकर बैठ गए।"

महाराणी चेलनीने भी भगवानकी स्तुति और पूजा बड़ी भक्तिसे की और वे भी मनुष्य कोठेमें बैठ गईं। श्रावक-श्राविकाओंके लिये समानरूपसे यह आवश्यक है कि वे नित्य प्रति जिनेन्द्र भगवानका पूजन और शास्त्र स्वाध्याय एवं दानादि षट्कर्म करें।

आजकल इस ओरसे शिथिलता आ गई है। पुरुष वर्ग

ही इन आवश्यक कर्तव्योंकी पूर्ति नहीं करता है। बहिनें अपने भाईयोंसे भी अगाड़ी बढ़ी हुई हैं। वे पूजा करना अपना काम ही नहीं समझती हैं, परन्तु ऐसा नहीं है। भगवानने तो श्रावक-श्राविका दोनोंके लिये ही इन आवश्यक कर्तव्योंका विधान किया है। बहिनोंके ही पूजासे विमुख होनेका फल हम पुरुषोंकी रुचि पूजाकी ओर समुचित रीतिमें न होनेके रूपमें मिल रहा है। परम सुखकी प्राप्तिके लिए भगवानका पूजन-भजन अत्यन्त आवश्यक है।

सम्राट् श्रेणिक और सम्राज्ञी चेलनीने भगवान्की पूजा वन्दना करके गौतम गणधरको भी नमस्कार किया और धर्मामृत पानकी इच्छासे उसकी बाबत पूछा। पूछते ही भगवानकी दिव्यवाणी खिरने लगी! वे इस प्रकार उपदेश देने लगे—

"राजन्! सकल भव्योत्तम! प्रथम ही तुम सात तत्वोंका श्रवण करो। सातों तत्व सम्यग्दर्शनके कारण हैं और सम्यग्दर्शन मोक्षका कारण है। वे सात तत्व जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष हैं। जीवके मूल भेद दो हैं— त्रस और स्थावर। स्थावर पांच प्रकार हैं-पृथ्वी, अप, तेज, वायु और वनस्पति। ये पांचों प्रकारके जीव चारों प्राणवाले होते हैं। और इनके केवल स्पर्शन इंद्रिय होती हैं। ये पांचों प्रकारके जीव सूक्ष्म और स्थूल भेदसे दो प्रकार भी कहे गये हैं और ये सब जीव पर्याप्त, अपर्याप्त और लब्ध्यपर्याप्त इस

रीतिसे तीन प्रकार भी हैं। पृथ्वी जीव चार प्रकार हैं—पृथ्वीकाय, पृथ्वीजीव, पृथ्वी और पृथ्वीकायिक। इसी प्रकार जलादिके भी चार२ भेद समझ लेना चाहिये। आदिके चार जीव घनांगुलके असख्यातवे भाग शरीरके धारक हैं।

वनस्पतिकायके जीवोंका उत्कृष्ट शरीर परिमाण तो संख्यातांगुल है और जघन्य अंगुलके असंख्यात भाग है। शुद्धेतर पृथ्वी जीवोंकी आयु बारह हजार वर्षकी है। कठिन पृथ्वीकायिक जीवोंकी बाईस हजार वर्षकी है। जलकायिककी १०० वर्षकी है व तेजकायिककी तीन दिनकी है। एवं वायुकायिक जीवोंकी तीन हजार और वनस्पतिकायिक जीवोंकी उत्कृष्ट आयु दश हजार वर्षकी है। विकलेंद्रिय जीव तीन प्रकार हैं—दो इंद्रिय, तेइंद्रिय और चौइंद्रिय। संज्ञी और असंज्ञी भेदसे पंचेन्द्रिय भी दो प्रकार है। पंचेंद्रिय जीव, मनुष्य, देव, तिर्यंच और नारकी भेदसे भी चार प्रकार है। नारकी सातों नरकमें रहनेके कारण सात प्रकार हैं

तिर्यंचोंके तीन भेद हैं-जलचर, स्थलचर और नभचर। भोगभूमिज और कर्मभूमिज भेदसे मनुष्य दो प्रकारके हैं। जो मनुष्य कर्मभूमिज हैं वे ही मोक्षके अधिकारी हैं। देव भी चार प्रकार हैं—भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिष्क और वैमानिक। भवनवासी दश प्रकार हैं—व्यन्तर आठ प्रकार, ज्योतिषी पांच प्रकार और वैमानिक दो प्रकार हैं। इस प्रकार संक्षेपसे जीवोंका वर्णन कर दिया गया।

अब अजीव तत्त्वका वर्णन भी सुनिए—

अजीवतत्त्वके पांच भेद हैं-धर्म, अधर्म, आकाश, काल और पुद्गल। उनमें धर्मद्रव्य असंख्यात प्रदेशी जीव और पुद्गलके गमनमें कारण एक और सत्तारूप द्रव्य लक्षण युक्त है। अधर्म द्रव्य भी वैसा ही है, किंतु इतना विशेष है कि यह स्थितिमें सहकारी है। आकाशके दो भेद हैं—एक लोकाकाश, दूसरा अलोकाकाश। लोकाकाश असंख्यात प्रदेशी है और अलोकाकाश अनन्तप्रदेशी है।

लोकाकाश सब द्रव्योंको घरके समान अवगाह दान देनेमें सहायक है। कालद्रव्य भी असंख्यात प्रदेशी एक और द्रव्यलक्षण युक्त है। यह रत्नोंकी राशिके समान लोकाकाशमें व्याप्त है। कर्मवर्गणा, आहारवर्गणा आदि भेदसे पुद्गल द्रव्य अनत प्रकार है, और यह शरीर और इंद्रिय आदिकी रचनामें सहकारी कारण हैं।

आश्रव दो प्रकार हैं—द्रव्याश्रव और भावाश्रव। दोनों ही प्रकारके आश्रवके कारण मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद आदि हैं।

जीवके विभाव परिणामोंसे बंध होता है और उसके चार भेद हैं—प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्ध।

आश्रवका रुकना संवर है, संवरके भी दो भेद हैं—द्रव्यसंवर और भावसंवर। और इन दोनों ही प्रकारके संवरोंके कारण गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा आदि हैं।

निर्जरा दो प्रकार है—सविपाकनिर्जरा और अविपाक-निर्जरा। सविपाकनिर्जरा साधारण और अविपाकनिर्जरा तपके प्रभावसे होती है।

द्रव्यमोक्ष और भावमोक्षके भेदसे मोक्ष भी दो प्रकार कहा गया है, और समस्त कर्मोंसे रहित हो जाना मोक्ष है।

राजेन्द्र ! यदि इन्हीं तत्त्वोंके साथ पुण्य और पाप जोड़ दिये जांय तो ये ही नव पदार्थ कहलाते हैं। इस प्रकार पदार्थोंके अनन्तर भगवानने श्रावक व मुनिधर्मका भी वर्णन किया।

(श्रेणिकचरित्र पृष्ठ ३२४-३२७)

श्रावकके अणुव्रतों आदिको श्रवणकर श्रेणिक और चेलनी विशेष हर्षित हुये। उन्होंने जान लिया कि बिना मधु, मांस, मदिराका त्याग किए और पंचाणुव्रतोंको धारण किए कोई भी श्रावक नहीं हो सकता। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शील और अपरिग्रह व्रतोंका पालन करना परमावश्यक है। मुनिधर्ममें इनका पालन पूर्ण रूपसे करना पड़ता है और श्रावक उनको एकदेशसे धारण करता है। जानबूझ कर मन, वचन, कायकी प्रवृत्तिसे किसी प्राणीके प्राणोंको दुःख न पहुंचाना ही अहिंसा व्रत है। सर्वदा ही प्रिय, हित-मित, यथार्थ वचन बोलना ही सत्याणुव्रत है। किसीकी भूली अथवा पड़ी वस्तुको और दूसरेको बिना आज्ञा उसकी वस्तु ग्रहण नहीं करना अस्तेय अणुव्रत है। स्त्री-पुरुषोंको अपने पति-पत्नीमें नियमितरूपसे

विषयभोग भोगना एवं शेष स्त्री–पुरुषोंको मातृ–पितृवत् समझना ब्रह्मचर्याणुव्रत है। तथा अपनी गृहस्थी संबंधी भोगोपभोगकी सामग्रीको नियमित रखनेका व्रत लेना परिग्रह-प्रमाणव्रत है। इस तरह सामान्य रूपसे अणुव्रतोंका स्वरूप है। श्रावकोंको नित्य देवदर्शन, पूजन, स्वाध्याय आदिकी भांति पालन करना आवश्यक है।

सम्राट् श्रेणिक और महाराणी चेलनी श्रावकधर्मको श्रवण कर त्रेशठ शलाका पुरुषोंका पुण्यचरित्र सुनने लगे। उपरान्त उन्होंने अपने पूर्वभव भगवानके मुखसे श्रवण किये।

महाराणी चेलनीके साथ अभयकुमार भी गये थे, उन्होंने भी भक्तिभावसे अपने पूर्वभव भगवानसे पूछे। दिव्यध्वनि द्वारा उनका वर्णन इस प्रकार होने लगा—

"वेणातड़ागपुर निवासी एक ब्राह्मण वेदाभ्यास करनेके लिये चला। दैवयोगसे उसके साथ२ एक श्रावक भी चल दिया। चलते२ कुछ दूर जब वह विप्र पहुँचा तो मार्गमें उसे एक बडका वृक्ष दीख पड़ा। ब्राह्मणने भक्तिभावसे उसकी प्रदक्षिणा दी और मस्तक झुकाकर नमस्कार किया।

ब्राह्मणके साथमें जो श्रावक गया था वह जैनधर्मका परम भक्त था। ब्राह्मणने जो कार्य किया उसको देख वह मुस्कराने लगा और वृक्षके थोडे पत्ते तोड लिये तथा उनसे पैर

पोंछे और इन्हें जमीनपर डाल दिया। श्रावककी यह चेष्टा देख ब्राह्मण अपना क्रोध न सम्भाल सका। शीघ्र ही उसने श्रावकसे कहा—

अरे भाई! तुम क्या करते हो? क्या तुम नहीं जानते कि देवकी अवज्ञा महा कष्ट प्रदान करनेवाली है। उत्तरमें श्रावकने ब्राह्मणसे कहा–भाई! यदि तुम्हारा यह देव पवित्र और शक्तिमान होगा तो मेरा विनाश करेगा और कुछ न होगा तो कुछ नहीं कर सकता।

श्रावककी यह बात सुन ब्राह्मण उत्तर तो न दे सका केवल यही उसने पूछा कि भाई! तुम्हारा देव कौन है?

उत्तरमें श्रावकने कहा—मेरा देव आगे है। तुम मेरे देवको क्यों पूछते हो? हंसकर ब्राह्मणने उत्तर दिया–जिस प्रकार तुमने मेरे देवका तिरस्कार किया, उसकी परीक्षा की है उस प्रकार मैं भी तुम्हारे देवका तिरस्कार कर उसकी परीक्षा करूंगा। इसमें जरा भी सन्देह मत समझो।

कुछ दूर चलकर एक कपिकच्छ (खुजली करनेवाले) वृक्षको देख देखी। उसे श्रावकने कहा–प्रिय विप्र! मेरा सबसे उत्कृष्ट देव यह है। भक्तिपूर्वक सदा इसकी पूजा करना चाहिये। सुनकर ब्राह्मणने हंसकर उसके पत्ते तोड़ लिये और उनसे अपना शरीर पोंछ नीचे डाल जल्दी २ आगे चल दिया।

बस, आगे थोड़ी ही दूर पहुँचा था कि उसका सारा शरीर खुजलीसे व्याकुल हो गया एवं वह दुःखित हो जमीन पर गिर गया तथा श्रावकसे कहने लगा—

भाई ! तुम्हारा देवता सच्चा है। इस प्रकार प्रतिबोध देकर श्रावकने विप्रके अन्दर और जो दो मूढ़ताका भाव विद्यमान था वह दूर कर दिया और वे दोनों आगे चलने लगे ।*

---

* जैन शास्त्रमें जो उक्त कथानक द्वारा भगवान महावीरके पहिले ब्राह्मणोंमें वृक्ष पूजा और गंगाजल पूजाको प्रचलित प्रगट किया है वह यथार्थमें ठीक ही है । म० हीस डेविड्सने अपनी 'बुद्धिस्ट इन्डिया' नामक पुस्तकमें यह प्रमाणित किया है कि बौद्धके पहिले पीपल आदि वृक्षोंकी पूजा विशेष रूपसे चालू थी । तथा बौद्धोंके चूलवग्ग ग्रन्थमें इस बातका उल्लेख एकसे अधिक वार आया है कि गगा और माहीपर मेले लगते थे; जैसे आजकल प्रयागमें कुम्भ आदिके मेले लगते हैं। इनसे जैन शास्त्रके उक्त कथानकके विवरणकी स्पष्ट पुष्टि होती है। और जैन शास्त्रोंके कथा-ग्रन्थोंकी प्रमाणिकता प्रगट होती है । उनमें बहुतसा ऐतिहासिक मसाला भरा पड़ा है । आवश्यकता केवल इस बातकी है कि उपलब्ध जैन साहित्यको प्रकाशमें लाया जाय और विद्वानोंको उसका अध्ययन करनेके लिए उत्साहित किया जाय । उक्त कथानकमें जैन धर्मका अस्तित्व भगवान महावीरसे पहिले बतलाया है, जैसे कि जैनी उनसे पहिलेके २३ तीर्थकरोंके जमानेसे उसका अस्तित्व मानते हैं। आधुनिक खोजने भी २३ वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथकी ऐतिहासिकता स्वीकार की है। बौद्ध ग्रन्थ महावग्ग'में भगवान महावीरसे पूर्वके जैन मुनियोंका उल्लेख 'तित्थिया' रूपमें आया है उन्हें नग्न व क्रियावादी लिखा है। आजीवकोंने जिन पूर्वोसे सहायता ली थी वह जैनियोंके माने हुये पूर्व है। इस तरह भी भगवान महावीरसे पूर्व जैन धर्मका

आगे चलकर गंगा नदीका तीर्थ पड़ा। भागरथी, हरि और विप्र, ऐसा उच्चारण कर वह ब्राह्मण गंगामें कूद पड़ा। मिथ्यात्वी ब्राह्मणकी यह चेष्टा देखकर श्रावकने पूछा—

भाई! इस तीर्थका तुमने क्या गहरा माहात्म्य समझ रक्खा है? उत्तरमें ब्राह्मणने कहा—

भाई श्रावक! यह तीर्थ हम सरीखे मनुष्योंको तारक है। फिर वैकुण्ठको देता है जहांपर कि गौहत्या आदि पंच-हत्याओंसे छुटना होता है।

ब्राह्मणकी यह बात सुन भोजन करनेकी इच्छासे श्रावक उसके नटपर बैठ गया। जब खा चुका और जूठा बच रहा वह जलमें मिलाकर उसे समर्पण कर दिया अर्थात् गंगामें क्षेपण कर दिया। श्रावककी यह चेष्टा देख ब्राह्मण कहने लगा—

हां हां! तूने मेरा भोजन अपवित्र कर दिया। उत्तरमें श्रावकने कहा—

भाई विप्र! तुम जल्दी क्यों नहीं खा लेते?

ब्राह्मणने कहा—बता मैं खाऊं कैसे, साक्षात् शूद्र स्वरूप पापी, तूने सबका सब जूठा और अपवित्र कर दिया। उत्तरमें श्रावकने कहा—भाई! ब्राह्मण जो जलमें मिश्रित धान्य तुम्हें

पवित्र बना सकता है उसे तुम खाते क्यों नहीं हो ? मेरे जूठे और अपवित्र करनेपर वह जूठा और अपवित्र नहीं माना जा सकता। इत्यादि बहुतसी युक्ति प्रयुक्तियोंसे श्रावकने ब्राह्मणका मिथ्यात्व भगा दिया। ब्राह्मणने भी उस श्रावकको अपना गुरु माना और उससे जैन धर्म पढ़ा।

वहांसे आगे फिर भी वे दोनों चल दिये। आगे जाकर वे रास्ता भूल गये और एक ऐसी महावनीमे जा निकले जो क्रूर वनोंसे भरी हुई थी। दोनोंने वहांपर सन्यास मरण किया। विप्र मरकर पहिले स्वर्गमें अनेक सुर असुरोंसे सेवित देव हो गया। प्रियकुमार ! वहांसे चलकर तुम राजा श्रेणिकके अभयकुमार नामके पुत्र हुये हो और इसी भवमें तप तपकर नियमसे परमपद मोक्ष प्राप्त करोगे।

(विमलपुराण पृष्ठ ९७-१००)

इसके उपरांत सम्राट् श्रेणिक गौतम गणधरको प्रणाम कर उनसे अपनी बुद्धि व्रतोंमें न लगनेका कारण पूछने लगे। मगधेशके ऐसे वचन सुन गणनायक गौतमने कहा—

राजन् ! भोगके तीव्र संसर्गसे, गाढ मिथ्यात्वसे, मुनिराजके गलेमें सर्प डालनेसे, दुश्चरित्रसे और तीव्र परिग्रहसे तूने पहिले नरकायु बांध रक्खी है, इसलिए तेरी परिणति व्रतोंकी ओर नहीं झुकती। जो मनुष्य देवगतिका बन्धन बांध चुके हैं

उन्हींकी बुद्धि व्रत आदिमें लगती है। अन्य गतिकी आयु बांधनेवाले मनुष्य व्रतोंकी ओर नहीं झुकते। नरनाथ। संसारमें तू भव्य और उत्तम है।

पुराण श्रवणसे उत्पन्न हुई विशुद्धिसे तेरा मन अतिशय शुद्ध है। सात प्रकृतियोंके उपशमसे तेरे औपशमिक सम्यग्दर्शन था। अन्तर्मुहूर्तमें क्षायोपशमिक सम्यक्त्व पाकर उन्हीं सात प्रकृतियोंके क्षयसे अब तेरे क्षायिक सम्यक्त्वकी प्राप्ति हो गई है। यह क्षायिक सम्यक्त्व निश्चल अविनाशी और उत्कृष्ट है। भव्योत्तम ! तू अब किसी बातका भय मत कर। सम्यग्दर्शनकी कृपासे आगे उत्सर्पिणीकालमें तू इसी भरतक्षेत्रमें पद्मनाभ नामका धारक प्रथम तीर्थंकर होगा। इसलिए तू आसन्न-भव्य है।

(श्रेणिकचरित्र पृष्ठ ३२७-३२८)

सम्राट् श्रेणिक गणधर भगवानके मुखसे यह वचन सुनकर परम हर्षवान हुए। एवं भगवानको यथोचित रीतिसे नमस्कार करके वे पुनः राजगृहको लौट आए। व्रतोंका पालन करते हुये और धर्मकी परम प्रभावनामें दत्तचित्त रहते हुये वे सानन्द कालयापन करने लगे। उन्होंने श्री सम्मेदशिखरपर बीस तीर्थंकरोंके मोक्षस्थानोंपर चरणचिह्न पुनः स्थापित किये और मन्दिरादि बनवाए। सारे देशमें जैन धर्मकी प्रभावना

वास्तवमें यदि महाराणी चेलनीके गाढ़ श्रद्धानसे सम्राट् श्रेणिक सम्यक्त्वको धारण कर भगवानसे विविध धर्म प्रेच्छा न करते तो आज हमें जैन धर्मकी प्राप्ति होना दुष्कर था। इसलिए महाराणी चेलनी और सम्राट् श्रेणिकका हमें परम आभारी होना चाहिये। उनके गहन ऋणसे उऋण होनेके लिये उनके पवित्र धार्मिक जीवनका अनुकरण करना आवश्यक है।

(१२)

महाराणी चेलनीका अंतिम जीवन

"भावयेद्‌ भेदविज्ञानमिदमच्छिन्नधारया।
तावद्यावत्पराच्च्युत्वा ज्ञानं ज्ञाने प्रतिष्ठते॥
भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन।
तस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन॥"

श्री अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं कि "धारावाही लगातार भेदविज्ञानकी भावना करते रहना चाहिये, उस वक्त तक जबतक कि ज्ञान ज्ञानमें न प्रतिष्ठित हो जावे अर्थात्‌ जब तक केवलज्ञान न हो, बराबर भेदविज्ञानकी भावना करते रहे। आज तक जितने जीव सिद्ध हुये हैं सो सब भेदविज्ञानके प्रतापसे सिद्ध हुए हैं और जिनको भेदविज्ञानका लाभ नहीं हुआ है वे सब बंधे पड़े हैं। भेदविज्ञानके बराबर दृढ़तासे अभ्यास करनेसे शुद्ध आत्मतत्वका लाभ या ध्यान होता है। शुद्धात्मध्यानसे रागद्वेषका ग्राम नष्ट हो जाता है, तब नए कर्मोंका संवर हो जाता है तथा पूर्वकर्मकी निर्जरा होकर परम संतोषको रखता हुआ निर्मल प्रकाशमान्‌ शुद्ध एक उत्कृष्ट केवलज्ञान निरन्तर अविनाशीरूपसे स्वाभाविक ज्ञानमें उद्योत्तमान रहता है।

इसलिए हरएक भव्य जीवको अपना नरजन्म दुर्लभ

ज्ञान इसको सफल करनेके लिये स्याद्वादनयके द्वारा अनन्त स्वभाववाले जीवादि पदार्थोंका स्वरूप जिनवाणीके हार्दिक अभ्यास व मननसे जान लेना चाहिये व जानकर उनपर अटल विश्वास रखकर उनका मनन करनेके लिये निरन्तर देवभक्ति, सामायिक, स्वाध्याय, गुरुजन संगति, संयम व दानका अभ्यास करना चाहिये।

इसीके प्रतापसे जब निश्चय सम्यग्दर्शन प्राप्त हो जाता है तब आत्माका (शरीरसे भिन्न) भीतर झलकाव होता है और अतींद्रिय आनन्दका स्वाद आता है। यही भेदविज्ञान है, उसका मधुर फल है अतएव इस आनन्दकी वृद्धिके लिये वह सम्यग्दृष्टी निराकुल होनेके लिए श्रावकके चारित्रको पालता हुआ स्वानु-भवके अभ्यासको बढ़ाता रहता है। जब उस आत्मानन्दके सम्यक्भोगमें परिग्रहका सम्बन्ध बाधक प्रतीत होता है तब सर्व वस्त्रादि परिग्रहको छोड़ अट्ठाईस मूलगुणको धारकर साधु हो जाता है। साधुपदमें शरीरमात्रको आहारपानका भाड़ा दे उसके द्वारा अनेक कठिन२ तप करके ध्यानकी शक्तिको बढ़ाता जाता है। आत्मध्यानके प्रतापसे ही यदि तद्भव मोक्ष होना होता है तो उसी भवसे मुक्त हो जाता है, नहीं तो स्वर्गादिमें जाकर परम्पराय मुक्तिका लाभ करता है।

यद्यपि इस पंचकालमें इस भरतक्षेत्रसे मुक्ति नहीं है तथापि हम धर्मके प्रतापसे विदेहक्षेत्रमें मनुष्य होकर शीघ्र ही मुक्त हो सकते हैं। अब भी इस भरतक्षेत्रमें सातवां गुणस्थान

है, मुनियोग्य धर्मध्यान है इसलिये प्रमाद छोड़ संयमकी रस्सी पाकर आत्मध्यानके बलसे मोक्षके अविनाशी महलमें पहुंचनेका पुरुषार्थ करते रहना चाहिये।

(श्री प्रवचनसार टीका–सूरत, भाग २ पृष्ठ ३८९–३९०)

महाराणी चेलनी और सम्राट् श्रेणिकको वास्तविक भेद-विज्ञानकी प्राप्ति थी। उन्हें जिनतत्वोंमें परम श्रद्धान था, परन्तु हम पूर्वमें देख आए हैं कि पूर्वोपार्जित कर्मोंके प्रभावानुरूप उनमें व्रताचरणकी शक्ति नहीं थी। उनके चारित्रका अभाव था। यद्यपि कहा गया है कि ज्ञान विना थोथी सब क्रिया, परन्तु कोरा ज्ञान भी पूर्ण लाभप्रद नहीं है।

ज्ञानका पूर्ण महत्व तब ही है जब तद्रूप आचरण किया जाय। परमानन्दकी प्राप्ति चारित्रमार्गका अनुसरण करनेसे ही होती है। चारित्रके अभावमें यद्यपि सम्यक्तवमें दूषण नहीं आता, परन्तु उसके विना इहलोक और परलोक संबंधी सुख भी सहसा प्राप्त नहीं होता! सम्राट् श्रेणिकको अपने अंतिम जीवनमें इसका कटुफल सहन करना ही पड़ा था और उनके साथ महाराणी चेलनीको भी! वह तो उनकी अर्द्धांगिनी थीं। इस कारण उनके जीवनके प्रत्येक कार्यमें सम्मिलित थीं—सुख और दुःख दोनों हीमें उनका साथ उनसे था, अतएव महाराणी चेलनीका भी अन्तिम जीवन किंचित् दुःखमय हो गया था।

सम्राट् श्रेणिक कदाचित् एक रोज सभामें बैठे थे कि

राजकुमार अभयने आकर सर्वज्ञभाषित तत्वोंका उपदेश देना प्रारम्भ कर दिया और जब लोगोंकी दृष्टि तत्वोंकी ओर झुक गई तब अवसर पा वैराग्यसे प्रेरित उन्होंने अपने पितासे यह निवेदन किया कि—पूज्यपिता ! इस संसारसे अनेक पुरुष चले गये। युगकी आदिमें ऋषभ आदि तीर्थंकर भरत आदि चक्रवर्ती भी कूच कर गये। कृपानाथ ! यह संसार एक प्रकारका विशाल समुद्र है, क्योंकि समुद्रमें जैसी मछलियां रहतीं हैं वैसी संसाररूपी समुद्रमें भी जन्मरूपी मछलियां हैं। समुद्रमें जैसे भमर पड़ते हैं, संसाररूपी समुद्रमें भी दुःखरूपी भमर हैं। समुद्रमें जैसी कल्लोलें होती हैं, संसारसमुद्रमें भी जरारूपी तीव्र कल्लोलें मौजूद हैं। समुद्रमें जिस प्रकार कीचड़ होती है संसाररूपी समुद्रमें भी पापरूपी कीचड़ है।

जैसा समुद्र तटोंसे भयंकर होता है उसी प्रकार संसाररूपी समुद्र भी मृत्युरूपी तटसे भयंकर है। समुद्रमें जैसा वड़वानल होता है, संसारसमुद्रमें भी चतुर्गतिरूप वड़वानल है। समुद्रमें जैसे कछुवे होते हैं संसार-समुद्रमें भी वेदनारूपी कछुवे मौजूद हैं। समुद्रमें जैसे बालूके ढेर होते हैं वैसे संसारसमुद्रमें दरिद्रतारूपी बालूके ढेर मौजूद हैं। एवं समुद्र जैसा अनेक नदियोंके प्रवाहोंसे पूर्ण रहता है, संसार भी उसी प्रकार अनेक प्रकारके आस्रवोंसे पूर्ण है।

महनीय पिता ! बिना धर्मरूपी जहाजके इस संसारसे पार करनेवाला कोई नहीं है।...संसारको... क्षणभंगुर समझ

पूज्यपिता ! मुझपर प्रसन्न हूजिये और मनुष्योंको अनेक कल्याण देनेवाली तपस्याके लिए आज्ञा दीजिये। पूज्यपाद ! आपकी कृपासे आजतक मैं राज्यसम्बन्धी सुख और स्त्रीजन्य सुख खूब भोग चुका, अब इससे विमुख होना चाहता हूं।"

(श्रेणिकचरित्र पृष्ठ ३४५)

पुत्रके इन शब्दोंसे श्रेणिकके चित्तपर बडा आघात हुआ। वे तीव्र मोहके वशीभूत हो अपने प्रिय पुत्र और युवराजको तरह तरहसे समझाने लगे, परन्तु जिसका हृदय पूर्ण वैराग्यमें भीग गया हो, उसपर और कोई असर नहीं पड़ सकता है। कुमारने अपने बुद्धिकौशलसे श्रेणिकको प्रतिबुद्ध कर दिया और उनकी आज्ञा लेकर तथा माताको सम्बोधकर और अपना प्रिय स्त्रियोंको समझाकर भगवानके समवशरणकी ओर प्रस्थान कर गये।

समवशरणमें पहुँचकर भगवान महावीरके निकट कुमार अभयने दिगम्बरी दीक्षा धारण की। वे मुनि होकर घोर तपश्चरण करने लगे। अन्ततः उन्होंने केवलज्ञान प्राप्तकर यथार्थ सुखका सन्देश बहुत काल तक लोगोंको सुनाया। उपरान्त मोक्षसुखको प्राप्त किया।*

---

* कुमार अभयका विवरण बोद्धोंके ग्रन्थोंमें कई स्थानपर आया है। चूलवग्गमें उनका उल्लेख जीवन वैद्यकी रक्षा रूपमें आया है। बौद्धोंके तिब्बतीय दुलवमें जो इन्हें वैशालीकी आम्रपाली वेश्याका पुत्र बतलाया है वह मिथ्या है और स्वयं बौद्धोंके पाली ग्रन्थोंके खिलाफ है। संभवतः जैनियोंसे द्वेष होनेके कारण ऐसा लिखा गया होगा;

कुमार अभयके मुनि हो जानेपर युवराजपद महाराणी चेलिनीके प्रथम पुत्र कुणिक अजातशत्रुको मिला। सम्राट् श्रेणिक, युवराज कुणिक और महाराणी सुखपूर्वक कालयापन करने लगे।

अचानक एक समय धर्मसेवनकी इच्छासे और राज्यकीय झंझटोंसे छूटकर चिन्ताका नाश करनेके लिए एवं सुखपूर्वक स्थितिके लिए सम्राट् श्रेणिकने सब सामन्तों और नृपोंको एकत्रित करके उनकी सम्मतिपूर्वक बड़े समारोहसे अपना विशाल राज्य युवराज कुणिकके सुपुर्द कर दिया। अब पूर्व पुण्योदयसे युवराज कुणिक सम्राट् कहे जाने लगे। वे नीति-पूर्वक प्रजाका पालन करने लगे और समस्त पृथ्वी उन्होंने चौरादिसे भयवर्जित कर दी। वे आनन्दसे जैनधर्मका पालन करते हुये जीवनसुखका अनुभव लेने लगे।×

क्योंकि अभयकुमारका भगवान महावीरका दृढ़ भक्त होना बौद्धोंके अगुत्तर निकाय नामक ग्रन्थके एक कथानकसे प्रमाणित है। इस कथानकमें अभय और एक पंडित कुमार नामक लिच्छवि-क्षत्रीका समागम बुद्धदेवके शिष्य आनन्दसे हुआ लिखा है। आनन्दको अभयकुमारने भगवान महावीरको सर्वज्ञ सर्वदर्शी बतलाया और उनके धर्मको सुझाया, यह उससे प्रकट है। इसके अतिरिक्त और स्थानोंपर भी ऐसा ही उल्लेख है। विशेष विवरणके लिए हमारी "भगवान महावीर" नामक पुस्तकका २७ वा परिच्छेद देखिये।

× बौद्ध ग्रन्थोंमें कुणिक अजात शत्रुको "सर्व दुष्कृत्योंका समर्थक और पोषक" इस ही कारण लिखा प्रतीत होता है कि उसे प्रारम्भमें जैन धर्मसे प्रीति थी।

ऐसे ही राज्यभोग करते अकस्मात् उन्हें पूर्वभवके वैरका स्मरण हो आया। उन्होंने अपने पूज्य पिता श्रेणिकको अपना वैरी समझ उनको शीघ्र ही काठके पिंजरेमें बन्द करा दिया। इस समय महाराज श्रेणिकको मुनिकंठमें निक्षिप्त सर्प-जन्य पापका फल भोगना पड़ा। महारानी चेलनीने कुणिकको ऐसा घृणित कार्य करनेसे बहुत रोका, परन्तु वह दुष्ट उल्टा उन्हें दुष्ट वचन कहने लगा। खानेके लिए वह श्रेणिकको रूखासूखा अन्न देने लगा और प्रतिदिन भोजनके समय उनसे कुवचन कहने लगा। महाराज श्रेणिक चुपचाप यह सब कुछ सहन करते थे और कर्मके स्वरूपको विचार पापके फलका चिंतवन करते थे।*

उधर कुणिक आनन्दपूर्वक रहने लगा। आचार्य कहते हैं कि एक समय दुष्टात्मा पापी राजा कुणिक अपने लोकपाल

* बौद्धोंके अमितायु'ध्यान सूत्र नामक ग्रन्थमे भी इस ही प्रकारकी घटनाका उल्लेख है। उसमें लिखा है कि देवदत्तके कहनेपर कुणिकने अपने पिताको कैद किया था। इस विषयका पूर्ण उल्लेख हमारे 'भगवान महावीर'के पृष्ठ १४०-१५२ पर देखना चाहिये। वस्तुत यह सभव है कि बौद्धोंके उकसाने और पूर्व वैरके कारण आजातशत्रु कुणिकने अपने पिता श्रेणिक बिम्बसारको जो कि जैन धर्मानुयायी थे, कष्ट दिया और यही कारण है कि बौद्ध ग्रन्थ उनके अन्तिम परिणामका कुछ निश्चित उल्लेख नहीं करते। अन्तमें कुणिकने अपने जैन धर्मरत पिताको बन्धनमुक्त करना चाहा था। बौद्ध भला इस बातको कैसे लिख देते! बौद्ध शास्त्रोंके विवरणोंको सावधानीसे पढ़ना ही उपयुक्त है।

नामक पुत्रके साथ सानन्द भोजन कर रहा था। बालकने राजाके भोजनपात्रमें पेशाब कर दिया। राजाने बालकके पेशाबकी ओर कुछ भी ध्यान न दिया; वह पुत्रके मोहसे सानंद भोजन करने लगा और उसी समय उसने अपनी मातासे कहा– 'माता! मेरे समान पुत्रका मोही इस पृथ्वीतलमें कोई नहीं, यदि है तो तू कह।' माताने जबाब दिया।

राजन्! तेरा पुत्रमें क्या अधिक मोह है। सबका मोह तीनों लोकमें बालकोंपर ऐसा ही होता है। देख! यद्यपि तेरे पिताके अभयकुमार आदि अनेक उत्तमोत्त पुत्र थे तो भी बाल्यावस्थामें पिताका प्यार और मान्य तू था वैसा कोई नहीं था।

प्यारे पुत्र! तेरे पिताका तुझमें कितना अधिक स्नेह था? सुन, मैं तुझे सुनाती हूं। एक समय तेरी अंगुलीमें बड़ा भारी घाव हो गया था उसमें पीड़ा थी। घावके अच्छे करनेके लिए बहुतसी दवाइयां कर छोड़ीं तो भी तेरी वेदना शांत न हुई। उस तेरे मोहसे तेरे पिताने तेरे मुखमें अंगुली देदी और तेरी सब पीड़ा दूर करदी। माता चेलनीकी यह बात सुन दुष्ट कुणिकने जवाब दिया–माता! यदि पिताका मुझमें मोह अधिक था तो जिस समय मैं पैदा हुआ था उस समय पिताने मुझे निर्जनवनमें क्यों फिकवा दिया था? *

---

* इस वार्तालापसे स्पष्ट प्रमाणित है कि कुणिकको उससे पिताके प्रति बरगलाया गया। बौद्धश्रमण देवदत्तने अवश्य ही कुणिकसे कहा

मातानें जवाब दिया—प्रियपुत्र ! तू निश्चय समझ, तेरे पितानें तुझे वनमें नहीं फिकवाया था किंतु तेरी भृकुटी भयंकर देख मैंने फिकवाया था । तेरा पिता तो तुझे वनसे ले आया था व राजा बनानेके लिये सानन्द तेरा पालन पोषण किया था । यदि तेरा पिता ऐसा काम न करता तो तुझे राज्य क्यों देता ? पुत्र ! तेरे पिताका तुझमें बड़ा स्नेह, बड़ा मोह और बड़ी भारी प्रीति थी । तुझसे वे अनेक आशा भी रखते थे । इसमें जरा भी झूठ नहीं ! जैसी वेदना इस समय तू अपने पिताको दे रहा है, याद रख ! तेरा पुत्र भी तुझे वैसी ही वेदना देगा । खेतमें जैसा बीज बोया जाता है वैसा ही फल काटा जाता है, उसी प्रकार जैसा काम किया जाता है फल भी उसीके अनुसार भोगना पड़ता है । राजन् ! जिसने तुझे राज्य दिया, जन्म दिया और विशेषतया पढ़ा लिखाकर तैयार किया, क्या उस पूज्यपादके साथ तेरा यह क्रूर वर्ताव प्रशंसनीय हो सकता है ? ”

(श्रेणिक चरित्र)

अपनी माताके मुखसे यह वचन सुन कुणिक बड़ा

होगा कि तेरे पितानें तेरे साथ ऐसा कठोर व्यवहार किया और फिर भी तू नाराज बैठा है । इधर पूर्व वैर था ही । बस काम बन गया । देवदत्त उसे अपने पक्षमें करना ही चाहता था । यह कहना कि उस समय कुणिक युवराज था जैन शास्त्रके उक्त कथनसे बाधित है । बौद्ध शास्त्रोंमें उक्त कथानक एक रूपमें नहीं मिलता । उसमें श्रेणिकके अन्तिम परिणामका कोई निश्चयात्मक निर्णय नहीं है ।

बिस्मित हुआ और वह अपने दुष्कृत्य पर घोर पश्चाताप करने लगा। उसका हृदय इस समय इतना ममोहत हुआ कि वह अपने पापके प्रायश्चित्त स्वरूप अपने पूज्य पिताको बन्धनमुक्त करनेको शीघ्र उद्यत हुआ। इसी निश्चयको दृढ़कर जैसे ही कुणिक पिताको बन्धनमुक्त करनेको बढ़ा, वैसे ही उधर उसे आता देख सम्राट् श्रेणिकने समझा कि आज कुछ और अधिक उपद्रव करेगा, वे घबड़ा गये और रोज रोजके अपमानसे तंग आकर उन्होंने अपना सिर दीवालसे धरमारा। मस्तिष्कमें कुछ ऐसी चोट आई कि उनके प्राणपखेरू उसी समय उड़कर अपने दुष्पापोंका परिणाम प्रथम नरकमें भोगनेको चले गये। आपत्तिमें धीर पुरुषोंकी भी मति ठिकाने नहीं रहती! अपघात जैसे घोर पातकका फल सम्राट् श्रेणिकको—भावी तीर्थंकरको प्रथम नरकमें दुःख भोगने रूपमें मिल रहा है। कर्मोंके दरबारमें किसीकी रियायत नहीं! जो जैसा करता है वैसा भरता है।

महाराणी चेलनी अभी तककी दशाको कर्मफल स्वरूप विचार गम्भीरतापूर्वक सहन कर रही थीं। पतिदेवका कष्ट उन्हें असह्य था, परन्तु जब उन्होंने जान लिया कि कुणिक इस प्रकार नहीं मानेगा तो वह खामोश हो गई। कलह करना उन्होंने किसी तरह भी मुनासिब न समझा।

वास्तवमें कलह करनेसे सिवाय पापोंके आश्रवके कुछ भी भलाई नहीं होती! और पापाश्रवके कारण दुःख उठाने पड़ते

है, इसलिए नीतिनिपुण महारानी चेलनाने इस घोर संकटमें भी पुत्रसे कोई कलह नहीं की! वह ऐसा उचित अवसर देखती रही जिस पर पुत्रका हृदय बदल देती, और पाठक देख ही चुके हैं कि वह आखिरमें इस प्रकार मिल गया था! परन्तु श्रेणिककी आयुष्यका अन्त इसी प्रकार था, वह अन्यथा हो कैसे सकता था?

कुणिकने जब अपने पिताको इस तरह परलोकवासी होते पाया तो उसके दुःखका पारावार न रहा! वह वहींसे चीख मारता अपने कियेके लिये माथा धुनता, गिरता पड़ता रनवासमें आया। वहां भी महाराज श्रेणिकके परलोकवासके समाचार मिलते ही हाहाकार मच गया। सब रानियाँ आश्रयहीन हो गईं, उनका जीवनाधार उठ गया! संसार उनके लिए सूना हो गया। महारानी चेलनीका सौभाग्य उन्हींके पुत्रके हाथोंसे नष्ट हो गया! ऐसे विचित्र संसारमें रहकर किससे मोह किया जाय? किसको अपना समझा जाय? परन्तु भ्रमके वशीभूत हुये प्राणी अंधे हो रहे हैं।

संसारसे ममत्व नहीं त्यागते! आत्म-धुनमें नहीं लगते! एकवार नहीं, हजार वार नहीं, करोड़ वार नहीं, अनन्त वार जिन विषयसुखोंको भोगा और तृप्ति न हुई उनको अब भी नहीं छोड़ा जाता। यह है कर्मकी विचित्रता! दैवका प्राबल्य! यह स्वाधीन जीव स्वयं अपनी मूढ़ बुद्धि कर उसके

आधीन हो रहा है और फिर दूसरोंको दोष दे रहा है! कैसी अनोखी कहानी है!

महाराणी चेलनी भी आखिरको संसारमें भ्रमण कर रही थीं। उनकी सत्तामें भी मोहके अंश विद्यमान थे। वह अपने प्राणनाथके असामयिक अशुभ परलोकपासको श्रवणकर घोर विलाप करने लगी। अशरणका केवल धैर्य ही अवलम्बन है। अन्तमें महारानीको संतोष धारण करना ही पड़ा। कुणिकने पिताकी अन्त क्रिया की। देवदत्तके बहकानेसे उसका श्रद्धान जैनधर्मसे कम हो ही गया था, सो उसने पिताको आत्माकी सद्गतिकी अभिलाषासे ब्राह्मण आदि लोगोंको दान दिया एवं और भी अनेक विपरीत क्रियाएं कीं। यहां जैन शास्त्रको स्पष्ट मिथ्यादृष्टि लिखा है।

बाद्ध कहते हैं कि वह बौद्ध हो गया था, परन्तु अन्तमें जब सुधर्माचार्यका विहार भगवान महावीरके मोक्षप्राप्तिके बाद हुआ था तब फिर वह जिन धर्मकी शरण आया था।

सम्राट् श्रेणिकके परलोकवास उपरांत महारानी चेलनी आजकलकी विधवा बहिनोंकी भांति अपने पतिदेवकी याद अथवा अपने भाग्यको कोसनेमें ही दिन नहीं बितातीं थीं, वे संवेगके कारण शास्त्रस्वाध्याय आदि शुभ कार्योंमें लीन रहतीं। अपने सर्व आभूषण और सुन्दर रेशमी अथवा बारीक वस्त्र उतारकर एक ओर रख दिये थे। केश संवारना, ताम्बूल

खाना आदि जितने वासनामय कार्य थे उन्होंने सर्वथा त्याग दिये। वे सादा जीवन व्यतीत करने लगीं।

पुत्र-वधुएं आदि कोई भी उन्हें बुरी दृष्टिसे नहीं देखता था। वैधव्य किसीके परिणामाधीन नहीं है, इसलिए विधवाओंके प्रति घृणा करना भी ठीक नहीं है। विधवाओंको सत्संगतिके लाभके लिए एकांतमें विदुषी स्त्रियोंके साथ रहना आवश्यक है।

इस प्रकारके सादे जीवन व्यतीत करनेका फल यह है कि महारानी चेलनीको संसार बिल्कुल असार दीखने लगा। वह संसारकी क्षणिक दशासे परिचित होगई। विषयभोगोंकी तृष्णाको दुःखकारी समझने लगीं। इसलिए अबतक जो भोग भोगे थे उनके प्रायश्चित्त स्वरूप उसने साधुवृत्ति ग्रहण करनेका दृढ़ विश्वास कर लिया।

अपने निश्चयके अनुसार वह शीघ्र ही कुटुम्बीजनोंको संबोध कर भगवान महावीरके आर्यिका संघकी नेत्री गृहस्थावस्थाकी अपनी लघु भगनी चंदनाके पास पहुंची और उनसे अन्य अनेक राणियोंके समेत आर्यिकाके व्रत ग्रहण किये, सबने संयमको धारण कर लिया।

उन्होंने बहुत काल तक तप किया। आयुके अन्तमें सन्यास लेकर और ध्यान बलसे प्राण परित्याग कर निर्मल सम्यग्दर्शनकी कृपासे स्त्री-वेदका त्याग किया और उन महाराणी

चेलनीका जीव महान ऋद्धिका धारक अनेक देवोंसे पूजित देव हो गया। स्वर्गके अनेक सुख भोग भविष्यत् कालमें चेलनीका जीव नियमसे मोक्ष जायगा।

इस प्रकार महत् पुण्यवान् महाराणी चेलनीका ऐतिहासिक वृतान्त है। यह हमारे भाइयों और बहिनोंके लिए आदर्श स्वरूप है। भाइयोंको यह स्पष्ट शिक्षा दे रहा हैं कि वे महिलाओंका आदर करना सीखें, उनको पूर्ण शिक्षित बनावें तथा योग्य होनेपर प्रौढ़ अवस्थामें १५-१६ वर्षकी अवस्थामें उनका विवाह जैन जातिके किसी योग्य, निरोगी और ज्ञानवान कुमारके साथ करें, जिसका साधारण परिचय उसे पहिले ही प्राप्त हो गया हो।

विवाहके लिए आवश्यक नहीं कि वह एक ही उपजातिमें सोमित रहे और यह भी जरूरी नहीं कि विवाहमें बहुतसी फिजूलखर्ची की जाय।

इस प्रकारके उचित विवाह सम्बन्धमें हमारे युवक-युवतियोंके जीवन सुखसे व्यतीत होंगे और वे गृहस्थ धर्मका पूर्ण रूपसे पालन कर अन्तमें अपनी संतानको कारभार दे आत्मध्यान-परलोक साधनमें लीन होंगे, परोपकार भावसे अपना हित करेंगे और अपने चारित्रसे धर्मकी वास्तविक प्रभावना चहुंओर फैलायंगे, जैनधर्मका प्रचार जैन जनतामें करेंगे, उनको जैनत्व रंगसे रंगदेंगे और अन्य अन्य भाईयोंको

जैनधर्ममें दीक्षित करेंगे, वे ही आदर्श गृहस्थ होंगे। साथ ही समाजमें विद्यमान विधवाओंके प्रति भाइयोंका यह कर्तव्य होना चाहिये कि उन्हें अपने आत्मकल्याणार्थ श्राविकाश्रमोंमें भेज दें। इस प्रकार अपने आदर्श पुरुषोंका अनुकरण करनेसे हम धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पुरुषार्थोंका यथोचित पालन कर सकेंगे।

हमारी बहिनोंके लिए तो महाराणी चेलनीका जीवन बिल्कुल ही आदर्शरूप है। उनको वह स्पष्ट बतला रहा है कि किस प्रकार योग्य अवस्थामें शिक्षित हो गृह जीवनमें प्रवेश कर वे स्वयं सुखी हो सकती हैं और अपने पतियोंके जीवन सुखी बना सकती हैं। उनका जीवन बालिकाओंको धर्माध्ययन और संगीत आदि कला कौशलमें दक्षता प्राप्त करनेके लिए शिक्षा दे रहा है। चौदह-पंद्रह वर्षतक उन्हें किसी योग्य विदुषीके निकट अथवा श्राविकाश्रममें शिक्षा ग्रहण करनेके लिए उत्साहित कर रहा है। वधुओंको पतिभक्ति और गृहस्थधर्म पालन करनेका खासा सबक पढ़ा रहा है।

विधवाओंको किस प्रकार अपना जीवन व्यतीत करना चाहिये, यह स्पष्ट दर्शा रहा है। उनका जीवन परम आदर्श रूप है परन्तु उससे शिक्षा ग्रहण करना अथवा न करना हमारे आधीन है। लेकिन जो सुखकी खोजमें हैं वे अवश्य ही उनके दिव्य चारित्रसे शिक्षा ग्रहण कर अपने जीवनको सफल बनायेंगे

क्योंकि महापुरुष जिस पथका अनुसरण करते हैं वही ग्राहणीय होता है—

" महाजनाः येन गताः सः पन्थः। "

अतएव अंतमें इस ही पवित्र भावनाके साथ महाराणी चेलनीका सुन्दर चरित्र पूर्णताको प्राप्त होता है कि भारतके घर घरमें उनके समान उन्नत और आदर्श चारित्रवान महिलाएं हों! जय, सम्राट् श्रेणिकके जीव भगवान पद्मनाभकी जय! शुभमस्तु! कल्याणमस्तु!

— वन्दे वीरम् —